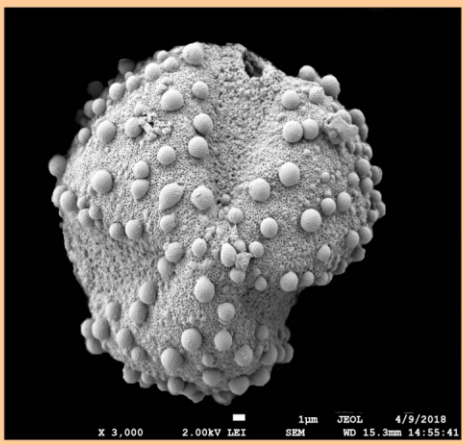
वर्ष 2023, अंक 2

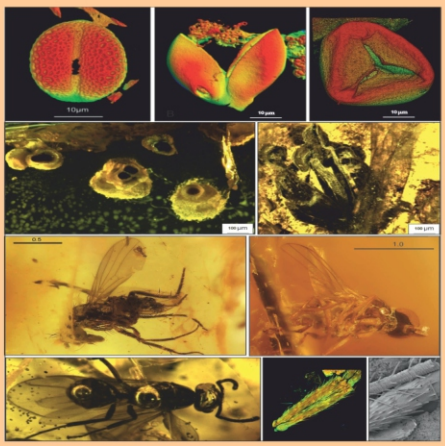
पुराविज्ञान स्मारिका

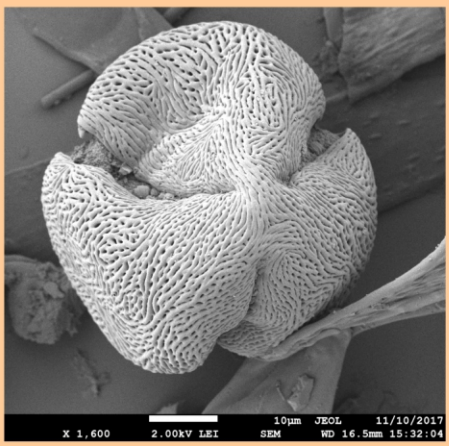
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राजभाषा पत्रिका

1946









बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान,लखनऊ

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत स्वायत्त संस्थान, भारत सरकार, नई दिल्ली

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ-226007, उत्तर प्रदेश, भारत

प्रकाशक

निदेशक

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान

53, विश्वविद्यालय मार्ग, लखनऊ-226007, उत्तर प्रदेश, भारत

दूरभाष : +91-522-2740470 / 2740413 / 2740011 / 2740865

फैक्स : +91-522-2740485 / 2740098

ई-मेल : director@bsip.res.in

वेबसाइट: http://www.bsip.res.in

संपादन एवं संकलन

डॉ. (श्रीमती) स्वाति त्रिपाठी

डॉ. (श्रीमती) पूनम वर्मा

टंकण

श्री अक्षय कुमार, कु. आर्या पांडे एवं श्री अजय कुमार श्रीवास्तव

विशेष सहयोग

डॉ. नीलम, श्री अशोक कुमार, श्री रतनलाल मेहरा एवं डॉ. सैयद राशिद अली

प्रस्तुति

राजभाषा कार्यान्वयन समिति तथा प्रकाशन इकाई

सितंबर 2023



वर्ष 2023, अंक 2

पुराविज्ञान स्मारिका

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राजभाषा पत्रिका



बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान,
भारत सरकार, नई दिल्ली
http://www.bsip.res.in



अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

महेश जी. ठक्कर 1

संपादकों की कलम से

स्वाति त्रिपाठी 2

पूनम वर्मा 3

अतिथि की लेखनी

रवि मिश्रा 5

अच्युता नंद शुक्ला 9

सामान्य लेख

शांति सागर के तट पर प्राचीनतम जीवन की खोज़

योगमाया शुक्ला 11

समुद्र के गर्भ में छुपी हुई खनिज संपदा : भारत महासागर की स्थिति

अभिजीत मजूमदार 13

कुलधरा और खाबा - जैसलमेर का भयावह सत्य या मिथक ?

ज्योत्सना राय 16

पश्चिमी हिमालय: प्राचीन वृक्षों का प्राकृतिक आवास

रवि शंकर मौर्या, साधना विश्वकर्मा एवं कृष्ण गोपाल मिश्र 22

शैल चित्र : आदिमानव के जीवन की झाँकी

चन्द्र मोहन नौटियाल 27

प्रतिष्ठित भारतीय महिला विज्ञानियों का परिचय तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र में भारतीय महिलाएं

सदानन्द 33

भावी जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से केरल अवसादी द्रोणी की महत्ता

योगेश पाल सिंह एवं पूनम वर्मा 38

अरुणाचल प्रदेश: इतिहास, भौगोलिक विशेषताएं तथा भूगर्भीय क्षेत्रीय भ्रमण

आलोक कुमार मिश्रा एवं दीपा अग्निहोत्री 40



समसामयिक लेख

तकनीकी युग में आधारभूत विज्ञान विषयों का घटता महत्व

आर्या पाण्डेय 44

पर्यावरण: जीवन का आधार

अक्षय कुमार 45

हिमालय के क्वार्टनरी निक्षेपों के भू-विरासत स्थल: बचाव हेतु अपेक्षित पहल

बिनीता फर्त्याल 47

आनुवंशिक एवं पर्यावरण तनाव के बीच जीव-रूपों की दृढ़ता: एक समीक्षा

शुभांकर प्रमाणिक 49

शोध लेख

भारतीय एम्बर में जीवाश्मों का संरक्षण

हुकम सिंह 52

मध्य गंगा के मैदान में पुरा-पर्यावरणीय परिवर्तनों को समझने हेतु बहु-प्रॉक्सी आधुनिक एनालॉग की स्थापना

स्वाति त्रिपाठी, बिस्वजीत ठाकुर, बिनीता फर्त्याल एवं अनुपम शर्मा 55

वेम्बनाड आर्द्रभूमि, केरल में पारिस्थितिक परिवर्तनों के मूल्यांकन में डायटम की भूमिका का विश्लेषण

पूजा तिवारी 57

कैरोफाइट शैवाल, स्थलीय जैविक उद्भव और विविधता : स्थलीय पादप के पूर्वज

नंदिता तिवारी 62

राजस्थान की मरुभूमि पर अतीत में पनपी हरियाली

काजल चंद्रा, अनुमेहा शुक्ला एवं आर. सी. मेहरोत्रा 67

कार्बनमय शेलों (कार्बोनेसियस शेल्स) और कोयले में विट्रीनाइट का परिपक्वता अध्ययन: हाइड्रस पायरोलिसिस से प्राप्त अंतर्दृष्टि

दिव्या के. मिश्रा, पॉल सी. हैकली, आरोन एम. जुब, मार्गरेट एम. सैंडर्स, शैलेश अग्रवाल एवं अतुल के. वर्मा 69

पाँच करोड़ वर्ष पूर्व भारतीय प्लेट के इतिहास का एक अंश

रिम्पी चेतिया एवं रून्सी पॉ. मेथ्युस 70

तकनीकी लेख

उष्णकटिबंधीय वन पारिस्थितिकी तंत्र में प्राथमिकता संरक्षण क्षेत्रों (पीसीए) की भविष्यवाणी हेतु प्रजाति वितरण मॉडल

ज्योति श्रीवास्तव 73



सेडिमेंट एंड मेंबर मॉडलिंग एनालिसिस (ईएमएमए) पर तकनीकी नोट और पुराजलवायु पुनर्निर्माण में इसकी व्याख्या

मसूद कवसर एवं मनोज एम.सी. 75

कविताएँ

हर मुश्किल एक दिन हल होगी

अमित कुमार मिश्रा 82

प्रयास का दिया

संध्या मिश्रा 82

रिश्ते

वाई.पी. सिंह 84

जीवन और संघर्ष

आर्या पाण्डेय 85

ये कर्म नहीं निश्फल होगा

पार्थ रंजन एवं आर्या पाण्डेय 86

नारी आज की नारी

अनसुया भण्डारी 86

माँ

बृजेश यादव 90

एक यात्रा

प्रियंका सिंह 91

उसकी चमक जैसे रत्नों में रूबी

वाई. पी. सिंह 92

राजभाषा हिंदी से संबंधित गतिविधियां 93

क्षेत्रीय अभियान की झलकियां 99

जनसंपर्क एवं अन्य गतिविधियाँ 110

शोध प्रबंध सारांश (पी-एच.डी. विद्या वाचस्पति की उपाधि) 131

निदेशक की कलम से .....



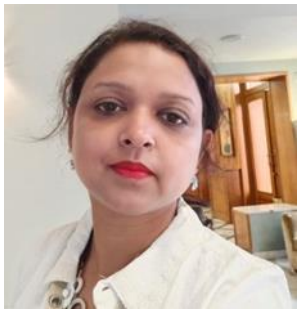
बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के स्थापना दिवस (10 सितंबर) के शुभ अवसर पर संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'पुराविज्ञान स्मारिका' के द्वितीय अंक का विमोचन हमारे लिए अतीव हर्ष की बात है। हिंदी न केवल हमारी राजभाषा है बल्कि इसका संबंध हमारी देशभक्ति की भावना से भी जुड़ा हुआ है। हमारे राष्ट्र की उन्नति हेतु हमारे प्रशासनिक कार्यों को पूर्णरूपेण से द्विभाषी या हिंदी में करना अति महत्वपूर्ण है। हमारा संस्थान राजभाषा के प्रसार के कार्य में तेजी-से प्रयासरत है। हाल के वर्षों में हमारे विज्ञानियों ने उच्च प्रभाव कारक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में शोध पत्र प्रकाशित किए हैं जो हमारे संस्थान की प्रगतिशीलता को परिलाक्षित करता है। विगत वर्षों में संस्थान के विज्ञानियों, तकनीकी स्टाफ ने उन्नत (आउटरीच) गतिविधियों के माध्यम से पुराविज्ञान विषय को जनमानस विशेषत: बच्चों तक सरल हिंदी में पहुँचाया है।

पत्रिका का उद्देश्य आम नागरिको तथा तमाम शैक्षणिक संस्थानों के छात्रों को हिंदी भाषा में पुराविज्ञान संबंधी शोध के प्रति जागरूक करना है। पत्रिका में लेख, कविता एवं चित्रो के माध्यम से योगदान देने वाले सभी विज्ञानियों, तकनीकी, प्रशासनिक स्टाफ एवं शोध छात्रों का मैं हृदय से धन्यवाद अर्पित करता हूँ। यहाँ मैं विशेष रूप से पत्रिका की संपादक डॉ स्वाति त्रिपाठी एवं डॉ पूनम वर्मा तथा सहयोगी श्री अशोक कुमार एवं श्री अक्षय कुमार की सराहना करता हूँ, जिनके निरंतर अथक प्रयासों से पत्रिका का द्वितीय अंक ससमय प्रकाशित हो सका। संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों को मेरी ढेर सारी बधाई।

मैं, अपने शासी मंडल, अनुसंधान सलाहकार समिति तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा प्राप्त निरंतर सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिए सदैव आभारी रहूँगा। अंत में मैं कामना करता हूं कि पुराविज्ञान स्मारिका को विज्ञानियों एवं जन-मानस से प्यार और प्रशंसा मिले और सभी अधिकारी एवं कर्मचारी पत्रिका के सुचारु रूप से प्रकाशन में हमेशा अपना योगदान देते रहें।

प्रो. महेश जी. ठक्कर
निदेशक
एवं
अध्यक्ष, राजभाषा कार्यान्वयन समिति

संपादक की कलम से .....



बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान की राजभाषा पत्रिका 'पुराविज्ञान स्मारिका' के द्वितीय अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करने में मुझे अपार हर्ष की अनुभूति हो रही हैं। हमारी संपादकीय नीति विज्ञानियों, छात्रों एवं आम जनमानस तक संस्थान में होने वाले जीवाश्म एवं जलवायु अनुसंधान को राजभाषा में परिचालन करने हेतु तत्पर है। शोध एवं तकनीकी लेखों के अलावा पाठकों के लिए सामान्य एवं समसामयिक लेख भी इस पत्रिका का हिस्सा हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि विज्ञान एवं सामान्य विषयों पर प्रकाशित हमारे लेख आपको रुचिकर लगेंगे और आप उन्हें अपने मित्रों और प्रियजनों के साथ भी साझा करेंगे। पुराविज्ञान अनुसंधान का मूल इसके क्षेत्रीय कार्य में निहित है और हमें विज्ञानियों द्वारा विभिन्न क्षेत्र भ्रमणों की तस्वीरें साझा करने में खुशी हो रही है। हिंदी कविता भारत के जन-जन तक अपनी भावनाओं को आकर्षक तरीके से संप्रेषित करने का सबसे अच्छा माध्यम है, और इसी कारण हमने इस पत्रिका में विभिन्न विषयों पर आधारित कविताओं को भी सम्मिलित किया है। हमारा उद्देश्य राजभाषा में कामकाज को समृद्ध करना है। हम अपने परिसर में नियत अवधि में हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन करते हैं तथा प्रत्येक वर्ष हिंदी पखवाड़ा बहुत सक्रिय रूप से मनाते है, जिनके छायाचित्र इस पत्रिका में विद्यमान है। पत्रिका में राजभाषा में नवीनतम गतिविधियों का सचित्र वर्णन है। संस्थान वैज्ञानिक गतिविधियों के अतिरिक्त पुराविज्ञान को जनमानस के बीच लोकप्रिय और प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा हैं जिसकी कुछ झलकियाँ आपको इस पत्रिका में देखने को मिलेंगी।

हमने इस पत्रिका के माध्यम से दैनिक जीवन में उत्पन्न होने वाले कुछ लोकप्रिय एवं महत्वपूर्ण विषय जैसे कि पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक जैव-विविधता, भू-विरासत स्थलों का संरक्षण व तकनीकी युग में आधारभूत विज्ञान के महत्व को भी सम्मिलित किया है। प्रतिष्ठित भारतीय महिला विज्ञानियों का विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में योगदान पर भी संस्थान के युवा शोध छात्र द्वारा प्रशंसनीय लेख प्रस्तुत किया गया है।

मैं, पत्रिका की विषय वस्तु को तथ्यपरक एवं रोचक बनाने हेतु सभी लेखकों का हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। मैं, अतिथि लेख हेतु डॉ. रवि मिश्रा एवं डॉ. अच्युता नन्द शुक्ला की विशेष आभारी हूँ। मैं पत्रिका में योगदान के लिए संस्थान के पूर्व विज्ञानियों, डॉ चंद्र मोहन नौटियाल एवं डॉ ज्योत्सना राय का भी आभार व्यक्त करती हूँ। मैं निदेशक महोदय एवं संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति को धन्यवाद देती हूँ जिनके सहयोग से इस पत्रिका का द्वितीय अंक समय पर प्रकाशित हो पाया। अंत में, मै बस कुछ शब्दों के साथ अपनी कलम को विराम देना चाहूँगी कि एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ भारत की पहचान है बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची संवाहक, संप्रेषक और परिचायक भी है। हमारा संस्थान राजभाषा प्रसार के लिए हर संभव प्रयास करता रहेगा।

डॉ. स्वाति त्रिपाठी
वैज्ञानिक- डी
एवं
सदस्य, राजभाषा कार्यान्वयन समिति



संपादक की कलम से .....



वर्ष 2022 से प्रारम्भ हुआ 'पुराविज्ञान स्मारिका' का ये सफर अपने दूसरे अंक में नये कलेवर, आयामों व रचनाकारों को अपने साथ लिए आपके समक्ष प्रस्तुत है। बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान लखनऊ, भारत सरकार के विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के अंतर्गत एक प्रमुख अनुसंधान केंद्र है, जो पृथ्वी के पुरातन से लेकर अभिनव काल तक के जीवन तथा जलवायु विकास से संबंधित वैज्ञानिक विषय में अनुसंधान के लिए समर्पित एक अद्‌वितीय संस्थान है। इस वैज्ञानिक संस्थान से राजभाषा हिन्दी में वार्षिक पत्रिका के प्रकाशन का उद्‌देश्य अनुसंधानात्मक तथा विभागीय कार्यकलापों को सहज-सरल भाषा में सामान्य नागरिकों तक पहुंचाना है। इसके साथ ही पत्रिका का उद्‌देश्य वैज्ञानिक तथा विभागीय कामकाज में हिन्दी को प्रोत्साहित करना है। इसके अतिरिक्त संस्थागत प्रतिभाओं को चाहे वो सेवारत कर्मचारी हों या शोधार्थी सभी को लेखन का मंच प्रदान करने के साथ-साथ अन्य गतिविधियों की जानकारी प्रदान करना भी है। बहुत से नये रचनाकारों को पत्रिका में स्थान मिला है और वे हिन्दी में रचनाएं लिख रहे हैं। पत्रिका को रोचक बनाने के लिए लेखों के विभिन्न स्तम्भ हैं जिनमें सामान्य, शोध, तकनीकी एवं समसामयिक लेख, के साथ कविताओं का संकलन व अन्य संस्थागत गतिविधियां हैं। विभिन्न स्तम्भों तथा गतिविधियों के छायाचित्रों के समावेश से पत्रिका को रुचिकर व प्रभावी बनाने का भरसक प्रयास किया गया है।

किसी भी संस्थान में किसी विचार को मूर्तरूप देने में उस कार्यालय के वरिष्ठगणों का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। मुझे ये लिखते हुए प्रसन्नता हो रही है कि हमारे कार्यालय के सेवानिवृत डॉ. चन्द्र मोहन नौटियाल व डॉ. ज्योत्सना राय ने सहर्ष अपना उत्कृष्ट लेख दिया। डॉ रवि मिश्रा, वैज्ञानिक-ई, ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान संस्थान, गोवा एवं डॉ अच्युता नन्द शुक्ला, वैज्ञानिक-ई पर्यावरण, वन व जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली का अतिथि लेख भी उल्लेखनीय है जिसके लिए उनको विशेष धन्यवाद प्रेषित है। डॉ. रवि मिश्रा जी ने अपने लेख में भारतीय संस्थानो में राजभाषा हिन्दी के अस्तित्व पर गहन विचार व्यक्त किए हैं तथा डॉ अच्युता नन्द शुक्ला जी ने प्रकृति पर वैश्विक कार्यान्वयन का मार्गदर्शन करने के लिए एक ऐतिहासिक समझौते का विवरण दिया है। इन दोनों ही विषयों पर आज के समय में चर्चा अति आवश्यक है।

पत्रिका के सामान्य लेखों में पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति और उसके प्रारंभिक स्वरूप के लेखों से लेकर हिमालय में नवीनतम जीवन के अवशेषों तक के वर्णन व उनके महत्व का समावेश किया गया है। भारत के सुदूर पूर्व के अरुणाचल प्रदेश तथा दक्षिण में केरल का इतिहास, भौगोलिक तथा भूगर्भीय विशेषताओं पर रोचक जानकारी भी निहित है। कुछ महत्वपूर्ण समसामयिक विषय जैसे पर्यावरण संरक्षण, प्राकृतिक जैवविविधता व तकनीकी युग में आधारभूत विज्ञान का महत्व भी संकलित किए गए है। संस्थान के एक युवा शोधार्थी द्‌वारा भारतीय महिला विज्ञानियों का विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र में योगदान पर सकारात्मक लेख अति सराहनीय है।

मूलतः अंग्रेजी में शोधकार्यों का प्रकाशन करने में पारंगत संस्थान के वैज्ञानिक व शोधार्थियों ने अत्यंत रोचकता व सहजता से सामान्य जन के लिए हिन्दी भाषा में शोध व तकनीकी लेख लिखे है जिसके लिए वो सराहना के पात्र है। इसके अतिरिक्त संस्थान के वैज्ञानिकों द्‌वारा किए गए क्षेत्रीय अभियान, जन-संपर्क गतिविधियों व अन्य राजभाषा संबंधी गतिविधयों को भी चित्रों सहित समावेशित किया गया है। संस्थान के शोधार्थियों नें भी बड़ी कुशलता से अपने पी.एच. डी. शोध प्रबंध के सारांश हिन्दी में प्रकाशित किए है जो अत्यंत प्रशंसनीय है।



मुझे यह लिखते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है कि हमारे कार्यालय के निदेशक महोदय ने हमेशा हिन्दी में कार्य करने के लिए कार्मिकों को प्रोत्साहित ही नहीं, वरन् स्वयं भी हिंदी के प्रति अनुरागी है। उनके दिशानिर्देश में 'पुराविज्ञान स्मारिका' अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल रही है। नगरीय राजभाषा कार्यान्वयन समिति, लखनऊ द्वारा इस पत्रिका के प्रथम अंक को प्रोत्साहन पुरस्कार प्राप्त करते हुए सराहना भी मिली है, जो कि अत्यधिक उत्साहवर्धक उपलब्धि है।

राजभाषा हिन्दी में कार्य करना हमारा नैतिक कर्तव्य ही नहीं बल्कि संवैधानिक दायित्व भी है। राजभाषा हिंदी सांस्कृतिक और सामाजिक परंपरा की धनी है और विचारों व भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण सक्षम भी है। राजभाषा हिन्दी की उपयोगिता को बढ़ाने में कार्यालयीन हिन्दी पत्रिकाएँ निरंतर महत्वपूर्ण योगदान देती रही हैं। हमारे संस्थान की 'पुराविज्ञान स्मारिका' पत्रिका का भी यही उद्देश्य है कि साहित्य के माध्यम से संस्थान के कार्यकलापों में राजभाषा हिन्दी को उसका उचित और गौरवपूर्ण स्थान दिलाया जाए।

अंत में मैं 'पुराविज्ञान स्मारिका' से जुड़े राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्यों को पत्रिका के नये अंक के प्रकाशन की बधाई देती हूँ। **संस्थान के सभी वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रशासनिक अधिकारी व कर्मचारी सदस्यों** को उनके सहयोग के लिए धन्यवाद देती हूँ। मुझे विश्वास है कि 'पुराविज्ञान स्मारिका' का यह अंक भी राजभाषा के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य को पूरा करने में सफल होगा। मैं यह आशा करती हूँ कि भविष्य में भी संस्थान के सभी कर्मचारी 'पुराविज्ञान स्मारिका' पत्रिका का प्रकाशन में अपना बहुमूल्य योगदान देते रहेंगे।

डॉ पूनम वर्मा
वैज्ञानिक- ई
एवं
संयोजक, राजभाषा कार्यान्वयन समिति

अतिथि की लेखनी

भारतीय संस्थानों में हिंदी के अस्तित्व की चुनौतियां



हिंदी भाषा एकमात्र ऐसी भाषा कही जा सकती है, जिसे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अपनी ही मातृभूमि पर अपने ही लोगों के मध्य संघर्ष करना पड़ा है। यद्यपि यह उसकी सहिष्णुता ही रही है कि कितनी ही चुनौतियों से जूझते हुए हिंदी ने आज अपना एक सशक्त वैश्विक स्वरुप प्रतिस्थापित करने में सफलता पाई है। ऑनलाइन डेटाबेस एथ्नोलॉग के आंकड़े दर्शाते हैं कि वैश्विक स्तर पर आज दुनिया के लगभग 61 करोड़ 50 लाख लोग हिंदी का उपयोग कर रहे हैं। यहां तक कि विश्व में कुल 140 विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा पाठ्यक्रम के अंतर्गत पढ़ाई जा रही है। अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अपनी पहचान बना रही हिंदी अपने साहित्य के माध्यम से लाखों प्रकाशकों और पाठकों को बांधे हुए है। अब तो आमजनों की सोच में भी धीरे-धीरे एक स्थान बना पाने की दिशा में हिंदी सतत अग्रसर हो रही है। फिर इतना सब कुछ प्रशंसनीय होने के बावजूद विशेष रुप से विभिन्न भारतीय संस्थानों में हिंदी के अस्तित्व की चर्चाएं समाप्त होने का नाम क्यों नहीं लेती हैं? यह सचमुच एक विचारणीय प्रश्न है।

यह सर्वविदित है कि भारत की संविधान सभा द्वारा 14 सितंबर 1949 को हिंदी को संघ की राजभाषा स्वीकार किया गया है। संविधान के भाग 5 एवं 6 के क्रमश: अनुच्छेद 120 तथा 210 में तथा भाग 17 के अनुच्छेद 343, 344, 345, 346, 347, 348, 349, 350 तथा 351 में राजभाषा हिंदी के संबंध में प्रावधान तैयार किए गए हैं। अतः ऐसा कतई नहीं है कि देश में राजभाषा हिंदी में कार्य करने के नियम और कानून नहीं हैं। यहां तक कि राजभाषा हिंदी के संवर्धन और स्थापना के लिए निरंतर प्रयास किए जाते रहे हैं। केंद्रीय गृह मंत्रालय के अधीन राजभाषा विभाग और शिक्षा मंत्रालय के अधीन केंद्रीय हिंदी निदेशालय जैसी कई संस्थाओं ने देश के कार्यालयों में हिंदी के प्रयोगों को बढ़ावा देने के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किए हैं। यहां तक कि कार्यालयीन कर्मचारियों को प्रोत्साहन देने के लिए राजभाषा गौरव पुरस्कार, राजभाषा कीर्ति पुरस्कार जैसे अनेक पुरस्कार दिए जाने की शुरुआत हुई है। वर्ष 1960 के राष्ट्रपति के आदेश से जब से केंद्र सरकार के कर्मचारियों के लिए हिंदी जानना अनिवार्य कर दिया गया है, तब से हिंदी सीखने वाले हिंदीतर भाषी लोगों के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के माध्यम से भारतीय भाषाएं सिखाने वाले एप लीला-राजभाषा का प्रचलन काफी सार्थक रहा है। कार्यालय और संस्थानों के कर्मचारियों को हिंदी सीखने के लिए यह मल्टीमीडिया आधारित बुद्धिमान



स्व-ट्यूटरिंग एप्लिकेशन वास्तव में हिंदी के विकास के लिए सूचना प्रौद्योगिकी का एक उल्लेखनीय साधन साबित हुआ है। भारतीय कार्यालयों और संस्थानों में हिंदी में कार्य करने के लिए अक्सर यह कहावत लागू की जाती रही कि न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी। परंतु पिछले कुछ सालों में जिस तरह से ई-सरल हिंदी वाक्य कोष और ई-महाशब्दकोश मोबाइल एप जैसे अनेक हिंदी-संबंधी कम्प्यूटर और मोबाइल साधन नौ मन तेल के रुप में सामने आए हैं, तब हिंदी का राधा के रुप में नृत्य करना सरल हो गया है। इतनी सुविधाओं पर भी अब यदि कोई कर्मचारी हिंदी में कार्य न करने में अक्षम है, तो दो ही बातें हो सकती हैं, एक वे हिंदी को न अपनाने की मनोग्रंथि से ग्रस्त हैं और दूसरा वे निश्चित रुप से ही नाच न आवे आंगन टेढ़ा उक्ति को चरितार्थ कर रहे हैं।

कार्यालयों में निर्मित ऐसी ही किन्हीं परिस्थितियों ने हिंदी में कार्य करने को एक बहुत बड़ी चुनौती बना दिया है। भारत में हिंदी के प्रति मनोग्रंथि बड़ा पुराना रोग है, जिसमें प्रायः लोगों को यह भ्रम होता है कि यदि वे हिंदी में बात करेंगे या कार्य करेंगे, तो उनका स्तर दोयम दर्जे का हो जाएगा। अतः वे अपनी साख बनाए रखने के लिए हिंदी में कार्य नहीं करना चाहते। यहां एक बड़ा कारण यह भी है कि ऐसी सोच के साथ काम करने वाले कर्मचारियों के लिए देश के और यहां तक कि संबंधित संस्थागत संविधान में भी कोई कड़े नियम लागू हैं ही नहीं कि प्रतिबद्धतावश ही सही, पर कर्मचारी हिंदी में कार्य करने के लिए बाध्य हो सकें। वरन विकल्प के रुप में अंग्रेजी का होना उनकी तथाकथित शान को बढ़ाए रखने के लिए काफी हो जाता है। इन ढुलमुल नियमों ने भारतीय संस्थानों में राजभाषा के प्रति सम्मान को न बनाए रखने की अग्नि को जलाए रखने में घी का काम किया है। हालांकि हिंदी के स्थान पर अंग्रेजी में कार्य करने को अहमियत देना उन कर्मचारियों के लिए तो तनिक भी कठिन नहीं होता है, जो उस भाषा में पारंगत होते हैं। मुश्किलें उन कर्मचारियों और अधिकारियों को आती हैं, जिन्हें अंग्रेजी भाषा उतने ढंग से नहीं आती कि वे अपने द्वारा मौलिक रुप से हिंदी में तैयार किए गए किसी दस्तावेज का अंग्रेजी अनुवाद सटीकता के साथ कर सकें। देखा यह जाता है कि देश के अनेक बड़े-बड़े संस्थानों में यह अलिखित परंपरा-सी बन गई है कि जो दस्तावेज मूलतः हिंदी में लिखे जा रहे हैं, उनके अंग्रेजी अनुवाद भी साथ में अनिवार्य रुप से तैयार किए जाएं। यद्यपि ऐसा कोई प्रावधान है नहीं, लेकिन प्रबुद्ध अंग्रेजी अधिकारियों को हिंदी में लिखी बात समझ में आ सकने के लिए येनकेन प्रकारेण अंग्रेजी अनुवाद करना या करवाना ही पड़ता है। विडंबना यह है कि ठीक इसके विपरीत जो सामान्य दस्तावेज कार्यालयों में अंग्रेजी में मूलरुप से तैयार किए जाते हैं, उनके हिंदी अनुवाद की अनिवार्यता तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरुप निर्धारित होती है, यानी अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद प्रक्रिया किसी बाध्यता की श्रेणी में नहीं आती है। खैर, यह समस्या हिंदी माध्यम से पढ़कर आ रहे कर्मचारियों को सुलझानी होती है, जिसे कुछ बखूबी हल कर लेते हैं और कुछ के लिए मशीनी अनुवाद



बड़ा सहारा बन गया है। यहां हिंदी का कार्यालयीन और संस्थायी अस्तित्व मशीनी अनुवाद के अवलंबन पर आश्रित कहा जा सकता है।

अब बात करते हैं देश के अधिकांश उन बड़े-बड़े संस्थानों की, जहां चयनित होकर आए या आ रहे कर्मचारियों की शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से हुई होती है। ऐसे में उनसे अचानक हिंदी में लिखते, पढ़ते या कार्य करते नहीं बनता है। यहां तक कि इन संस्थानों में जब हिंदी के अस्तित्व का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि अधिकतर भारतीय संस्थानों की वेबसाइटें मात्र संस्थान के नाम के अलावा हिंदी में उपलब्ध ही नहीं हैं। इन पर कुछ थोड़ी बहुत हिंदीमय जानकारियां उपलब्ध भी हैं तो वे मशीनी अनुवाद की भेंट चढ़ी हुईं हिंदी को मुंह चिढ़ाने के अलावा और कुछ नहीं कर रही हैं। संस्थानों में कर्मचारी और अधिकारी अंग्रेजी में लिखे प्रशासनिक पत्रों, कार्यालयीन आदेशों या अन्य सरकारी दस्तावेजों पर हिंदी में हस्ताक्षर करके अपनी हिंदी प्रतिबद्धता से फुर्सत हुए से जान पड़ते हैं। कोई कर्मचारी या अधिकारी जब इन संस्थानों में अपनी राजभाषा के प्रति सच्ची श्रृद्धा रखते हुए कार्य भी करना चाहे, तो वह या तो उपहास का पात्र बनता है या फिर उसे कार्य करने नहीं दिया जाता है। एक उक्ति में कहें तो हकीकत में भारतीय संस्थानों में हिंदी का अस्तित्व बनाए रखना बड़ी टेढ़ी खीर है। हिंदी में न कार्य करने वाले अधिकारी और कर्मचारी गणों के लिए और जो वास्तव में हिंदी में राजभाषा की प्रतिबद्धता के भाव से कार्य करने की प्रवृत्ति रखते हैं, यानी उन दोनों वर्गों के लिए अपने-अपने स्तर पर यह कार्य उल्टी गंगा बहाने वाली चुनौतियों से कम नहीं है। हां, यह सच है कि हिंदी वही गंगा है, जिसे भारत के संस्थानों में प्रवाहित हो पाना दूभर बना दिया गया है।

हिंदी के अस्तित्व को लेकर आज सबसे बड़ी जरुरत इस बात की है कि जिस तरह संस्थानों से इतर लोगों, समाजों, सोशल मीडिया, बाजारों, पश्चिमी देशों, संचार माध्यमों, आदि में हर तरफ हिंदी सम्मान पाती जा रही है, वैसा ही सम्मान उसे हमारे संस्थानों और कार्यालयों में भी मिलना चाहिए। प्रशासनिक शब्दावलियों को क्लिष्टता की श्रेणी में रखने वालों की सोच परिवर्तित होनी चाहिए, क्योंकि जिस भाषा में वे बड़ी सरलता से कार्य कर पा रहे हैं, अर्थात् वे निःसंदेह बुद्धिमान हैं, फिर हिंदी की सरलता उन्हें कठिन कैसे लग सकती है। यह मात्र हिंदी के प्रति दुराव वाली मनोग्रंथि है, जिसे खोलने की जरुरत है या फिर राजभाषा के प्रति उनकी भावशून्यता है, जिसे जाग्रत करने की आवश्यकता है। राजभाषा में कार्य करना हर संस्थान के कर्मचारी का नैतिक उत्तरदायित्व होना चाहिए। विशेषरुप से बचपन से हिंदी से दूर रखी गई हमारी वर्तमान युवापीढ़ी, जो आज की सद्यकर्मशक्ति के रुप में संस्थानों में भर्ती हो रही है और जिनके कंधों पर भारत के वैज्ञानिक और अन्य संस्थानों का भविष्य टिका हुआ है, में हिंदी के राजभाषा स्वरुप के उपयोग की ललक जगाने की महती आवश्यकता है। सच तो यह है कि संस्थानों में हिंदी का अस्तित्व इनके हाथों ही बचा रह सकता है। वर्तमान युवापीढ़ी के लिए तकनीक और प्रौद्योगिकी से बातें करना बांए हाथ का खेल है, इसलिए हिंदी का



तकनीकी स्वरुप में प्रयोग इनके लिए कोई बहुत बड़ी बात नहीं हो सकती। सिर्फ और सिर्फ हमारे युवाओं के मन में हिंदी के प्रति भरे गए उपहास, परिहास और दोयम दर्जे की होने की अस्मिता को जड़ से समाप्त करना होगा। इसके लिए निश्चित रुप से चीन, जापान, रूस, जर्मनी और फ्रांस जैसे अपनी मातृभाषा का सम्मान करने वाले आदर्श देशों की भांति ही भारत के संविधान और संस्थानों की राजभाषा में कार्य करने की नियमावलियों को सख्त बनाया जाना बेहद जरुरी है। कभी कभी अस्मिताओं की स्मिता बनाए रखने के लिए कठोर निर्णय लेने होते हैं। भारतीय संस्थानों में सिर्फ हिंदी हस्ताक्षरों से हिंदी की स्मिता छीनने वालों के लिए हिंदी की विधिक अनिवार्यता ही अमोघ अस्त्र हो सकती है।

डॉ. रवि मिश्रा
वैज्ञानिक ई
राष्ट्रीय ध्रुवीय एवं समुद्री अनुसंधान केंद्र, गोवा

अतिथि की लेखनी

CBD-COP 15: कुनमिंग-मॉन्ट्रियल वैश्विक जैवविविधता ढांचा



संयुक्त राष्ट्र जैव विविधता सम्मेलन (COP15) 19 दिसंबर 2022 को मॉन्ट्रियल, कनाडा में 2030 तक प्रकृति पर वैश्विक कार्रवाई का मार्गदर्शन करने के लिए एक ऐतिहासिक समझौते के साथ समाप्त हुआ। चीन द्वारा अध्यक्षता और कनाडा द्वारा आयोजित, COP-15 के परिणामस्वरूप कुनमिंग को अपनाया गया- मॉन्ट्रियल ग्लोबल बायोडायवर्सिटी फ्रेमवर्क (जीबीएफ)।

"कुनमिंग-मॉन्ट्रियल ग्लोबल बायोडायवर्सिटी फ्रेमवर्क" (जीबीएफ) में 2030 तक हासिल किए जाने वाले चार लक्ष्य और 23 प्रायोजन (टार्गेट) शामिल हैं।

कुनमिंग-मॉन्ट्रियल वैश्विक जैवविविधता की मुख्य विशेषताएं

जैविक विविधता पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के पक्षकारों के 15वें सम्मेलन के समापनोपरांत कुनमिंग-मॉन्ट्रियल ग्लोबल बायोडायवर्सिटी फ्रेमवर्क (जीबीएफ) को अपनाया गया।

प्रकृति में खतरनाक गिरावट के बीच एक मिलियन प्रजातियों के अस्तित्व को खतरा है जो अरबों लोगों के जीवन को प्रभावित कर रहा है, GBF का लक्ष्य प्रकृति के नुकसान को रोकना और उलटना है। योजना में 2030 तक हासिल किए जाने वाले वैश्विक लक्ष्यों और जैवविविधता की सुरक्षा और टिकाऊ उपयोग शामिल हैं।

कार्यान्वयन के लिए निम्नलिखित अठारह बिंदुओं को सूचीबद्ध किया गया है:-

1. स्वदेशी लोगों और स्थानीय समुदायों का योगदान और अधिकार
2. विभिन्न मूल्य प्रणालियाँ
3. संपूर्ण-सरकार और संपूर्ण-समाज दृष्टिकोण
4. राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, प्राथमिकताएँ तथा क्षमताएँ
5. लक्ष्यों के प्रति सामूहिक प्रयास
6. विकास का अधिकार



7. मानवाधिकार आधारित दृष्टिकोण
8. लैंगिक समानता तथा सशक्तिकरण
9. कन्वेंशन और उसके प्रोटोकॉल के तीन उद्देश्यों की पूर्ति और उनका संतुलित कार्यान्वयन
10. अंतर्राष्ट्रीय समझौतों या उपकरणों के साथ संगति
11. रियो घोषणा के सिद्धांत
12. विज्ञान एवं नवाचार
13. पारिस्थितिक तंत्र दृष्टिकोण
14. इंटरजेनरेशनल इक्विटी
15. औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा; विज्ञान-नीति इंटरफ़ेस अध्ययन और पारंपरिक ज्ञान-प्रणाली
16. वित्तीय संसाधनों तक पहुंच
17. सहयोग और समन्वय
18. जैवविविधता एवं स्वास्थ्य

GBF में प्रकृति की रक्षा हेतु चार व्यापक वैश्विक लक्ष्य समाहित हैं, जिनमें :- संकटग्रस्त प्रजातियों के मानव-प्रेरित विलुप्त होने को रोकना और 2050 तक सभी प्रजातियों के विलुप्त होने की दर को दस गुना न्यून करना; जैवविविधता का स्थायी उपयोग और प्रबंधन यह सुनिश्चित करने के लिए कि लोगों के लिए प्रकृति के योगदान को महत्व देना, बरकरार रखना और बढ़ाना आनुवंशिक संसाधनों के उपयोग से होने वाले लाभों का उचित बंटवारा, आनुवंशिक संसाधनों पर डिजिटल अनुक्रम सूचना; और यह कि GBF को लागू करने के पर्याप्त साधन सभी पक्षों, विशेष रूप से सबसे कम विकसित देशों और छोटे द्वीपो, विकासशील राज्यों के लिए सुलभ सम्मिलित हैं।

डॉ. अच्युता नंद शुक्ला
वैज्ञानिक ई
पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली



सामान्य लेख

शांति सागर के तट पर प्राचीनतम जीवन की खोज़

जीवन की उत्पत्ति, इसका प्राचीनतम रूप, प्राचीनतम रूप के प्रकार और इसके नए क्षितिजों में पाये जाने की संभावना हमेशा से ही न सिर्फ वैज्ञानिकों अपितु सामान्य जनमानस की भी जिज्ञासा का केंद्र रहे हैं। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति उसके आरंभिक स्वरूप का पता लगाने के लिए सबसे महत्वपूर्ण है उन क्षितिजों का पता लागाना जहां इनके पाए जाने की प्रबलतम संभावना हो। इसके लिए वैज्ञानिकों द्वारा प्राचीनतम चट्टानों की खोज कर उन चट्टानों मे संरक्षित जैविक चिह्नो का अध्ययन किया जाता है। जीवन के ये चिह्न या तो सूक्ष्म जीवाश्मों के रूप मे पाए जाते हैं या ऐसे कोई भी चिह्न जो उन जीवों की जैविक गतिविधियों/ क्रियाकलापों के बारे मे बताते हों, हो सकते हैं। पृथ्वी की अनुमानित आयु 4600 करोड़ वर्ष निर्धारित की गई है जब सौर मंडल की उत्पत्ति हुई थी। पृथ्वी की उत्पत्ती के लगभग 600 करोड़ वर्ष बाद का समय हेडेन ईआन कहलाता है। हेडेन ईआन भूगर्भीय समय सारिणी पर एक अनौपचारिक समय अवधि है जो की सौर मंडल के गठन और पृथ्वी की पहली परत के बनने के बीच का समय है। निरंतरित चट्टानों की अनुपलब्धता के कारण अधिकतर हेडेन ईआन के समय की पृथ्वी का रिकॉर्ड अचिन्हित है। पृथ्वी पर होने वाली टेक्टोनिक गतिविधियों एवं वास्तविक चट्टानों के रूपांतरण के कारण भी हेडेन चट्टानों की उपलब्धता नगण्य है। इन चट्टानों के अवशेष पृथ्वी पर ज़िरकन खनिज़ के रूप मे ही पाए जाते हैं। प्राचीनतम जीवन के अध्ययन के लिए उपयोगी चट्टानें आर्कियन ईआन मे मिलती हैं। ये चट्टानें क्रेटन के रूप ऑस्ट्रेलिया, अफ़्रीका, ग्रीनलैंड आदि देशो मे पाई जाती हैं। भारत मे आर्कियन चट्टानें पाँच क्रेटनों के रूप मे पाई जाती हैं। इनमें से सिंहभूमि और धारवाड़ क्रेटन में ये चट्टानें कम परवर्तित रूप मे उपलब्ध हैं तथा अध्ययन के लिए अनुकूल एवं सुलभ हैं।

वैज्ञानिकों द्वारा सिंहभूमि क्रेटन की चट्टानों मे उपस्थित ज़िरकन खनिज़ की आयु के निर्धारण से इसको विश्व की दूसरी प्राचीनतम चट्टान होने का गौरव प्राप्त है। अध्ययन के लिए उपयुक्त चट्टानों के बहुत सीमित मात्रा में उपलब्ध होने तथा प्रारंभिक जीवन का प्रारूप अतिसूक्ष्म तथा अज्ञात होने से संबंधित जटिलताओं के कारण आर्कियन पुराजैविकीय एक चुनौतीपूर्ण क्षेत्र है जहां प्रत्येक नई खोज़ उपलब्ध ज्ञान को और समृद्ध करती है। इन प्राचीनतम चट्टानों में जीवन के सूत्र तलाशते हुए एक नए स्ट्रोमेटोलाइट क्षेत्र की खोज की गई है। ये नया क्षेत्र लगभग दो दशकों के बाद भारत में खोजा गया कोई नया आर्कियन स्ट्रोमेटोलाइट क्षेत्र है। यह क्षेत्र दक्षिण भारतीय राज्य कर्नाटक के दावणगेरे जिले की चन्नागिरी तालुका में शांति सागर नमक झील के निकट स्थित है। यह एशिया की दूसरी सबसे बड़ी मानव निर्मित झील है। इस झील के दूसरी तरफ

बसवाराजापुरा ग्राम के समीप नए आर्कियन स्ट्रोमेटोलाइट क्षेत्र की खोज की गई है। यहाँ 260 करोड़ वर्ष पुराने स्ट्रोमेटोलाइट लगभग ½ वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र मे फैले हुए हैं। नए खोजे गए स्ट्रोमेटोलाइट धारवाड़ महासमूह (सुपरग्रुप) में स्थित शिमोगा शिस्ट बेल्ट के अलेशपुर फारमेशन का भाग है। ये होनहल्ली गुंबद क्षेत्र के पूर्व भाग मे स्थित क्रॉस बेडेड चूना पत्थर (लाइंमस्टोन) और डोलोस्टोन, एवं कार्बोनेशियस फिलाइट चट्टानों से युक्त क्षेत्र है। संरचनात्मक रूप से ये स्ट्रोमेटोलाइट परतदार कॉलम हैं जो कि अनुदैर्धर्य काट में गोलाकर एवं अंडाकार सतह की तरह प्रतीत होते हैं। कहीं-कहीं ये कॉलम दो भागो में विभाजित हो जाते हैं। ये विभाजित कॉलम आर्कियन जीवन की दृष्टि से एक उन्नत विकासवादी जैविक विशेषता है। स्ट्रोमेटोलाइट जीवन के प्राचीनतम उपलब्ध रूपो में से एक है जो सूक्ष्म जैविक गतिविधियों के फलस्वरूप बनते हैं। इनका निर्माण् सूक्ष्मजीवियों जो कि मुख्यतः बैक्टीरिया और साइनोबैक्टीरिया (नील-हरित शैवाल) के द्वारा होता है। इन सूक्ष्मजीवियों द्वारा एक चिपचिपा पदार्थ (म्यूसीलेज) उत्सर्जित किया जाता है, जो कि सेडीमेंट्स को बांधने का कार्य करता हैं जिससे एक परतदार सरंचना की रचना होती है।

आर्कियन स्ट्रोमेटोलइट में ये सूक्ष्मजीवी अधिकांशतः संरक्षित नहीं हो पाते हैं। इसका प्रमुख कारण इन करोड़ों वर्षों मे घटित होने वाली असंख्य विवर्तनिक (टेक्टोनिक) गतिविधियां एवं वास्तविक चट्टानों के रूपांतरण एवं डाएजेनेसिस है। इन सब सीमाओं के बावजूद स्ट्रोमेटोलाइट को प्रारंभिक जीवन का स्पष्ट प्रमाण माना जाता है। शांति सागर स्ट्रोमेटोलाइट विश्व के आर्कियन स्ट्रोमेटोलाइट की सूची मे एक नया योगदान है। शांति सागर स्ट्रोमेटोलाइट की खोज़ प्रारंभिक जीवमंडल को समझने मे एक महत्वपूर्ण कदम है। इसके साथ ही शांति सागर स्ट्रोमेटोलाइट को संरक्षित करने की अत्यंत आवश्यकता है ताकि प्राचीनतम धरोहरों को भविष्य में अध्ययन हेतु उपलब्ध कराया जा सके।



चित्र 1. शांति सागर झील क्षेत्र के पास स्थित स्ट्रोमेटोलाइट

योगमाया शुक्ला



समुद्र के गर्भ में छुपी हुई खनिज संपदा : भारत महासागर की स्थिति

पुराण इत्यादि में समुद्र को "रत्नगर्भ" कहा गया है। जीवन धारण हेतु समस्त प्रकार के प्रयोजनीय पदार्थ समुद्र के गर्भ से मिल सकते हैं यह विचार प्राचीन काल से ही था। परंतु उन दिनों उच्च तकनीकी विद्या व समुद्र के विषय में जानकारी के अभाव में उन खनिज पदार्थों का सटीक स्थान जानना एवं खदान रचना संभव नहीं हो सका।

आजकल बढ़ती हुई जनसंख्या तथा उसकी बढ़ती हुई मांग से भू-गर्भ में संरक्षित खनिज का संचय शनै-शनै समाप्त होता जा रहा है। अतैव नूतन खनिज भंडार की खोज करना अत्यावश्यक हो गया है। इसीलिए मनुष्य आज समुद्र में खनिज की ओर ध्यान देने में लगा हुआ है। इस अध्ययन से पता चला है कि मानव जाति के समस्त प्रकारो से प्रयोजनीय खनिज समुद्र तल के गर्भ में संचित हैं। भारतीय महासागर (अरब सागर तथा बंगाल की खाड़ी सहित) भी इस विषय में बाकी महासागरों से अछूता है।

खनिज के प्रकार : समुद्र के गर्भ में छुपे हुए खनिज के अध्ययन से पुरा-समुद्र के अवसाद के विषय में जानना अति आवश्यक है। क्योंकि अवसाद के प्रकार पर ही खनिज पदार्थों का संचय निर्भर करता है। यहाँ अवसाद को पाँच वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है :-

1. लिथोजेनिक अवसाद
2. बायोजेनिक अवसाद
3. हायड्रोजेनिक अवसाद
4. वलकैनोजेनिक अथवा ज्वालामुखीजनित अवसाद-
5. पैलियोजेनिक अवसाद

"लिथोजेनिक" अवसाद पूर्ण रूप से पत्थरों से गठित होते हैं। ये पत्थर भूमि से नदी में प्रवाहित होकर समुद्र में आते हैं। इसी प्रकार अवसाद में "प्लेसर" खनिज विद्यमान होता है। "बायोजेनिक" अवसाद पूर्ण रूपेण जैविक अवशेष से गठित होता है। खनिज-तेल तथा खनिज-गैस इसी प्रकार के अवसाद से प्राप्त होती है। "हायड्रोजेनिक" अवसाद में केवल समुद्री-प्राणी से उत्पन्न पदार्थ रहता है। "ज्वालामुखी-जनित" अवसाद में समुद्र के आभ्यंतर में अवस्थित ज्वालामुखी से उत्पन्न पदार्थ मिलते हैं। सल्फाइड जातीय खनिज इस प्रकार अवसाद में पाया जाता है। "पैलियोजेनिक" अवसाद का अर्थ है एकाधिक कारणों से उत्पन्न अवसाद जैसे "पॉलीमेटैलिक नॉड्युल" इसी प्रकार के अवसाद में मिलती है।

प्लेसर खनिज : जब नदी एवं वायु से प्रवाहित होकेर कुछ अन्य खनिज पदार्थ एक जगह एकत्रित हो जाते हैं तो उन खनिज पदार्थों के संग्रहण को "प्लेसर" खनिज कहते हैं। इन



खनिजों में टिन, सोना, लोहा, हीरा तथा प्लैटिनम इत्यादि उल्लेखनीय हैं। अफ्रीका के दक्षिण-पश्चिम सागर में तट के निकट ही हीरा प्राप्य है। प्लेसर टिन का एक विशाल भंडार थाइलैंड, इंडोनेशिया तथा मलेशिया के निकट समुद्र में खोज में मिला है। उन अंचलों में टिन संचय है। सरिताओं में प्रवाहित होकर समुद्र में आते हैं और समुद्र-गर्भ में जलमार्ग में संग्रहीत होते हैं। भारत के तटीय क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण "प्लेसर" खनिज प्राप्त होता है उसका परिमाण प्रति हजार टन निम्न रूप में है -:

प्लेसर खनिज	**भारत के तटीय क्षेत्र (हजार टन)**
इल्मेनाइट	163620
रूटिल	8170
ज़रकॉन	20640
गार्नेट	52940

उर्वरक खनिज : पृथ्वी में पाए जाने वाली खनिज उर्वरक में फॉस्फेट अति महत्वपूर्ण है, तथा इसी से अति प्रयोजनीय खनिज फॉसफोरस प्राप्त होती है। पृथ्वी में फॉस्फेट का भंडार इतना नहीं है कि सारे विश्व हेतु फॉस्फेट की आपूर्ति संभव हो सके। अतैव, समुद्र के गर्भ में इसके खोज की महती आवश्यकता हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के दक्षिर्णपूर्वी क्षेत्र, मेक्सिको के पूर्वी क्षेत्र पेरू, चिली तथा दक्षिण अफ्रीका के समुद्र तट पर पृथ्वी की अधिकांश फॉस्फेट प्राप्त होती है।

पॉलीमेटैलिक (मैंगनीज) नॉड्युल : लोहा, ताँबा इत्यादि के अति उपयोग से पृथ्वी पर उपलब्ध धातुओं का भंडार शनै-शनै समाप्त होता जा रहा है। परंतु समुद्र के गर्भ में नॉड्युल के रूप में इन प्रयोजनीय धातुओं का भंडार मिला है। ये नॉड्युल समुद्र तट से 4000 मीटर से अधिक दूरी पर गभीरता (गहराई) में मिलती हैं जहां अवसादन गति बहुत-कम है। इन नॉड्युल में अधिकतर मैंगनीज, लोहा, ताँबा, कोबाल्ट तथा निकेल हैं। भारतीय महासागर तथा पृथ्वी के समस्त महासागरों में इनका प्रतिशत निम्नवत है :-

धातु	भारतीय महासागर (%)	समस्त महासगार (%)
मैंगनीज (Mn)	24.40	16.02
लोहा (Fe)	07.10	15.55
निकेल (Ni)	01.10	00.48
कोबाल्ट (Co)	00.11	00.28
ताँबा (Cu)	01.04	00.26



इस नॉड्युल की उत्पत्ति के विषय में कई वितर्क हैं। अब तक जो सिद्धांत अति मान्यता प्राप्त है वह समुद्र गर्भ में-सक्रिय ज्वालामुखीय क्रियाशीलता है। समुद्र ज्वालामुखी से ये समस्त धातुएं निकलती है और समुद्र जल में घुल जाती हैं। तत्पश्चात-अवसादन के दौरान ये धातुएँ समुद्र के गर्भ में नॉड्युल के रूप में संचित हो जाती हैं।

खनिज तेल : पृथ्वी पर उपलब्ध खनिज तेल (पेट्रोलियम) की मांग दिनों-दिन बढ़ती जा रही है, परंतु मांग के अनुसार आपूर्ति दुर्लभ है। इसीलिये खनिज तेल के और भंडारों की खोज करना अत्यावश्यक है। अभी तक पृथ्वी के तटीय क्षेत्रों में ही तेल का भंडार मिला है, परंतु गहरे समुद्र में अभी-भी खनिज तेल की खोज करना बाकी है।

भारतीय महासागर की स्थिति : भारतीय महासागर पुराकाल से आर्थिक तथा राजनैतिक रूप से उल्लेखनीय क्षेत्र रहे हैं। इस अंचल में खनिज एवं कार्बनिक पदार्थों का एक विपुल भंडार का खुलासा हुआ है। समस्त विश्व का 80.7 औसत सोना, 56.6 औसत टिन, 28.5 औसत मैंगनीज, 25.2 औसत निकेल, 18.5 औसत बक्साइट (एलुमिनियम के अयस्क) तथा 12.5 औसत ज़स्ता इस अंचल में विद्यमान है। भारतीय महासागर में जितनी गहराई पर जो खनिज मिलता है उसकी स्थिति निम्नवत दर्शायी गई है :-

समुद्र की गभीरता(मीटर में)	खनिज पदार्थ
50-0	प्लेसर
1000-100	उर्वरक खनिज
6000-4000	मैंगनीज नॉड्युल

भारतीय महासागर का मैंगनीज नॉड्युल उल्लेखनीय खनिज है। 10 डिग्री से 16 डिग्री अक्षांश के बीच स्थित मध्य भारतीय महासागर द्रोणी (बेसिन) अंचल में प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र में 5 किलोग्राम मैंगनीज नॉड्युल प्राप्त होता है। इस द्रोणी का क्षेत्रफल 70 लाख वर्ग किलोमीटर तथा गहराई 5000 से 5500 मीटर है। इस द्रोणी में निकेल और ताँबा की औसत मात्रा (2.49%) अन्य महासागरों में उपलब्ध नॉड्युल की औसत मात्रा से अधिक है। इस द्रोणी में खनिज पदार्थों का औसत परिमाण नीचे दर्शाया गया है :-

खनिज पदार्थ	औसत परिमाण (%)
मैंगनीज	26.10
लोहा	07.60
निकेल	01.20
ताँबा	01.16
कोबाल्ट	00.12

निष्कर्ष: समुद्र के गर्भ में छुपे खनिजों की अभी तक संपूर्ण खोज नही हुई है क्योंकि समुद्र का बृहत अंचल अभी तक अन्वेषित करना शेष है। जितने खनिज पदार्थों का भंडार

अभी तक मिला है वही अभी-तक पूर्णरूपेण निकाला नहीं जा सका है क्योंकि 5000 मीटर गहराई में खुदाई करना आर्थिक तथा तकनीकी रूप से विकट समस्या है। सम्यक अन्वेषण तथा नूतन तकनीकों से आविष्कार हेतु हमारे देश तथा समूचे विश्व के विज्ञानीगण दिन-रात प्रयासरत है। हमें पूर्ण विश्वास है कि आगामी वर्षों में इन समस्याओं का समाधान निकल आएगा और समुद्र के गर्भ में छुपे हुए खनिज भंडार विश्व के दैनंदिन उपयोग हेतु सुलभ हो सकेंगे।

अभिजीत मजूमदार

कुलधरा और खाबा - जैसलमेर का भयावह सत्य या मिथक ?

मेरा बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान में लगभग छत्तीस साल का कार्यकाल मुख्यत: भारत के पश्चिमी भाग के कच्छ और जैसलमेर द्रोंणी में पुराप्लवकों के अध्ययन एवं शोध में बीता है। इस दौरान कई विचित्र स्थानों पर जाने का सौभाग्य मिला यह लेख उनमें से एक ऐसे ही स्थान पर है। यहाँ के जुरैसिक काल की चट्टान विश्व प्रसिद्ध हैं। जीवाश्मों से भरा होने के कारण आयु आकलन में मदद मिलती है तथा पेट्रोलियम की संभावनाएँ होने के कारण यह और अधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं।

जैसलमेर का इतिहास :- भारत के राजस्थान प्रांत का शहर जैसलमेर सुदूर पश्चिम में स्थित थार के मरूस्थल में स्थित है। इसकी स्थापना भारतीय इतिहास के मध्यकाल के आरंभ में सन 1178 ई. में "भाटी राजपूत" के वंशज रावल जैसल द्वारा की गई थी। रावल जैसल के वंशजों ने 770 वर्षों तक सत्त शासन किया, इसके पश्चात यह राज्य मुगल साम्राज्य के 300 वर्षों के शासन का दृष्टा बना तत्तपश्चात अंग्रेजी राज्य के दौरान इसका महत्व यथावत रहा। रेगिस्तान की विषम परिस्थितियों के कारण बीसवीं सदी के प्रारंभ में जैसलमेर की जनसंख्या मात्र पचहत्तर-छिहत्तर हज़ार ही थी।



चित्र 1. जैसलमेर का किला



जैसलमेर किले का भू-भाग प्राचीनकाल में "माड़धरा" अथवा 'वल्लभ मंडल' के नाम से प्रसिद्ध था। महाभारत के युद्ध के बाद जब द्वारिका पानी में डूब गयी तो बचे हुए यादव यहाँ आकर बस गए और कालांतर में अनेक सुंदर हवेलियाँ और जैन मंदिरों का निर्माण किया गया। जैसलमेर में दूर-दूर तक स्थायी व अस्थायी रेत के ऊँचें-ऊँचें टीले हैं, जो हवा और रेतीली आँधियों के साथ अपना स्थान भी बदलते रहते हैं। इस क्षेत्र के आधिपत्य की अभिव्यक्ति यहाँ के किलों, छत्रियों, गढ़ियों, राजभवनों, मंदिरों, हवेलियों और जलाशयों से होती है। दुर्ग मुख्यतः पत्थरों द्वारा निर्मित हैं। प्रत्येक दुर्ग मे चार या इससे अधिक बुर्ज बनाये जाते थे।

यहाँ का 'सोनार किला' राजस्थान के श्रेष्ठ धनवान दुर्गो में से एक माना जाता है। धानवान दुर्ग उन्हें कहते हैं जिनके दूर-दूर तक मरूभूमि फैली हो। ढाई सौ फुट ऊँचा और सैंडस्टोन के विशाल खंड़ों से निर्मित तीस फुट ऊँची दीवार वाले इस किले में निन्यान्वे प्राचीर हैं। इस किले के अंदर मौजूद कुंए का पानी एक निरंतर जल स्त्रोत है। रावल जैसल द्वारा निर्मित यह किला अस्सी मीटर ऊँची त्रिकैट पहाड़ी पर स्थित है। इसके महलों की बाहरी दीवारें, घर और मंदिर पीले रंग के सैंडस्टोन पत्थर से बने हैं। जब सुबह और शाम सूर्य की किरणें इन पर पड़ती हैं, तो यह स्वर्ण के समान चमकते है। इसीलिए इसे "सोनार किला" कहते हैं। इस किले में सकरी गलियाँ और चार प्रवेश द्वार हैं। जिसमें से अंतिम एक द्वार मुख्य चौक की ओर जाता है। जिस पर महाराजा का पुराना महल है। 18वीं-19वीं शताब्दी में बनी जैसलमेर की प्रसिद्ध हवेलियाँ तो स्थापत्य कला की बेजोड़ मिसाल हैं। सालिम सिंह की हवेली, पटवों की हवेली, नथमट की हवेली तथा किले के प्रासाद और बादल महल की कलात्मकता ने जैसलमेर को संसार भर में प्रसिद्ध कर दिया है "सोनार केल्ला" नामक विश्व प्रसिद्ध फिल्म का फिल्मांकन भी सन् 1971 ई. में इसी किले में हुआ है, जिसके निर्देशक श्री सत्यजीत रे थे।

अब हम अपने मुख्य विषय-वस्तु की ओर चलते हैं। जैसलमेर से कुलधरा गाँव की दूरी सत्रह (17) किलोमीटर और कुलधरा से खाबा पंद्रह (15) किलोमीटर है। यहाँ निजी वाहन या कैब द्वारा ही जाया जा सकता है और सड़क सीमा सुरक्षा बल (बी.एस.एफ) द्वारा बहुत अच्छी बना कर रखी है। जगह-जगह लगे साइन बोर्ड इन स्थानों पर पहुँचने में मदद करते है।

कुलधरा एक अभिशप्त गाँव - कुलधरा राजस्थान के जैसलमेर जिले का एक परित्यक्त गाँव है तेरहवीं शताब्दी के आस-पास स्थापित यह कभी पालीवाल ब्राह्मणों का गाँव था। जैसलमेर शहर से करीब 17-18 किलोमीटर दक्षिण-पश्चिम में यह स्थित है। गाँव की बस्ती देवी के एक मंदिर के आस-पास केन्द्रित थी। आज-भी वहाँ शहर की दीवारों के अवशेष देखे जा सकते हैं, कस्बे का पूर्वी हिस्सा छोटी 'कांकनी नदी' के सूखे तल का दर्शन कराता है। पश्चिमी भाग को मानव निर्मित संरचनाओं की पिछली दीवारों द्वारा

सुरक्षित किया गया है। कुलधरा गाँव मूलरूप से पालीवाल ब्राह्मणों द्वारा बसाया गया था जो पाली से जैसलमेर क्षेत्र चले गए थे। पाली से आने के कारण इन प्रवासियों को पालीवाल कहा जाता था। तरीखे-ए-जैसलमेर, लक्ष्मीचंद द्वारा लिखित सन 1899 ई. की इतिहास की किताब में उल्लेख है कि **"कर्धन"** नामक एक पालीवाल ब्राह्मण कुलधरा गाँव में बसने वाला पहला व्यक्ति था उन्होंने एक तालाब की खुदाई की उसका नाम उधनसूर रखा। गाँव के खंडहरों में तीन शमशान घाट है। जिनमें कई देवलियां (स्मारक पत्थर) हैं।



चित्र 2. कुलधरा के खंडहर

पालीवाल ब्राह्मणों का इतिहास - पालीवाल ब्राह्मणों का छः हजार साल पुराना इतिहास है। यह एक ब्राह्मण कम्युनिटी थी, जो व्यापार और खेती में प्रवीण थी। उनका उद्गम राजस्थान के "पाली" स्थान से हुआ था। लगभग 200 साल पहले वे भारत के विभिन्न भागों जैसे सौराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान आदि विभिन्न स्थलों पर चले गए। पालीवाल ब्राह्मण के वंशज महाराज हरिदास जी थे। जो महारानी रूकमणि के कुल पुरोहित थे और उन्होंने ही रूकमणि की प्रेम पाती श्रीकृष्ण तक पहुँचाई थी और उनका विवाह श्रीकृष्ण जी से करवाया था।

पालीवाल जाति का संदर्भ - पालीवाल राजपूतों का भी एक उपनाम है। वे चंद्रवंश के पलवल राजपूत थे और उनके वंशज "राजा भरत" थे। वे पांडवों के भी वंशज थे तथा परम वीर योद्धा थे। शायद यह वर्ण भेद कर्म पर आश्रित रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है। मेहनती और रईस पालीवाल ब्राह्मणों की कुलधरा शाखा ने सन् 1291 ई. में तकरीबन छः सौ घरों वाले इस गाँव को बसाया था। यह गाँव इतने वैज्ञानिक तरीके से बनाए गए थे कि यहाँ इतनी गर्मी में भी इनके घर ठंडे रहते थे। इन लोगों को वेद और शास्त्रों का भरपूर ज्ञान था। इसी ज्ञान से उन्होंने अपने लिए इतना कुछ बना लिया था। जैसलमेर में सबसे ज्यादा लगान यही लोग देते थे। वास्तुशास्त्र का इनको भरपूर ज्ञान था।



कुलधरा और खावा का वास्तुशास्त्र - जैसलमेर के कुलधरा और खाबा ऐसे गाँव है जो सुरंगों के ऊपर बने हैं। कहते है कि इन सौ सुरंगों में हमारे पूर्वजों का धन छुपा हुआ है। ऐसा मानना है कि इन गुफानुमा सुरंगों में आजतक जो भी गया है वह वापस नहीं आया है। यह सुरंगें उत्तर में अफगानिस्तान तक जाती थीं और दक्षिण में हैद्राबाद तक। जैसलमेर से पहले 'सिल्क रूट' गुजरात था जिस पर मुल्तान और कई देशो के कारवां गुजरते थे। पालीवाल ब्राह्मणों ने कुलधरा, खाबा आदि गाँव बसाए थे और वह इन देशों के साथ व्यापार करते थे। वे बहुत धनी और पढे-लिखे थे। इनके घरो को देखकर इनकी वैज्ञानिक भवन निर्माण शैली समझ में आती है। कुलधरा और खाबा के गाँव इस प्रकार से बनाए गये थे कि आप बिना घर से निकले अपनी बात सारे घरों तक पहुँचा सकते थे। असल में यह घर आपस में झरोखों से जुडे हैं।

खाबा किले के चारों कोनों पर बुर्ज बने हैं। जो किले की सुरक्षा हेतु निगरानी रखने के लिये बनाए गए थे। खाबा के किले में एक म्यूजियम बनाया गया है जिसमें कुछ मूर्तियां रखी हैं और कुछ पेंटिंग भी हैं। चारों ओर भेड़-बकरी चराते चरवाहे नज़र आते हैं पर आज कोई और हलचल नहीं दिखती है। जैसलमेर से खाबा का किला 32 कि.मी. की दूरी पर पड़ता है। यहाँ निजी वाहन और कैब द्वारा ही जाया जा सकता है। कुलधरा से खाबा 15 कि.मी. की दूरी पर है। ये गाँव तेरहवीं सदी के अत्यंत समृद्ध गाँव थे।

एक ही रात में खाली हो गए कुलधरा और खाबा गाँव - खाबा और कुलधरा गाँव आर्कियोलाजिकल सोसाइटी ऑफ इंडिया (ए.एस.आई) के अंतर्गत आते हैं। कुलधरा के मुख्य द्वार पर एक बोर्ड लगा है और वहाँ के बारे में लिखा है। उसके अनुसार जैसलमेर के एक अत्यंत क्रूर दीवान सालिम सिंह की बुरी नज़र पालीवालों के गाँव के मुखिया की सोलह वर्षीय अति सुंदर बेटी पर पड़ गई। उसने शादी के लिये लड़की के घर संदेश भेजा कि अगली पूर्णमासी तक या तो लड़की दे दो, नहीं तो सुबह होते ही वह, गाँव पर धावा बोलकर लड़की को उठा ले जाएगा। चौरासी गाँवों के लोगों की पंचायत में यह फैसला लिया कि अपनी लड़की वह दीवान को नहीं देंगे। ब्राह्मणों को यही सही लगा। जाति, धर्म, इज्जत और स्वाभिमान की रक्षा के लिये चौरासी गाँव एक ही रात में खाली करके चले गए और फिर वापस कभी नहीं लौटे। जाते-जाते वे एक श्राप दे गए कि दोबारा इन घरों में कोई बस नहीं पाएगा। तबसे लेकर आजतक कोई भी यहाँ बस नहीं पाया है और जो यहाँ रहता है उसके परिवार में किसी न किसी की मौत जरूर हो जाती है। आज इन गाँवों को पर्यटन स्थल बना दिया गया है। कई फिल्मों की भी यहाँ शूटिंग हुई है। कहते है कि अब यहाँ आत्माओं का राज है, जो रात होते ही बाहर आ जाती है। इस घटना को लगभग दो सौ वर्ष गुजर चुके हैं। जिल लोगो ने गाँव को फिर से आबाद करने की कोशिश की उन्होंने असाधारण गतिविधियों का अनुभव किया और इसलिये गाँव निर्जन रहता है। इन गाँवों ने भूत-प्रेत बाधित स्थानों के रूप में पर्यटकों को आकर्षित करना शुरू कर दिया है। सन

2010 ई. की शुरूआत में इंडियन पैरानार्मल सोसाइटी के सद्स्यों के अट्ठरह लोगो की टीम ने बारह अन्य लोगो के साथ कुलधरा और खाबा के किले में रात बिताई। उन्होंने दावा किया कि उन्हें हिलती-डुलती परछाइयां, भूतिया आवाजें, बात करने वाली आत्माओं और अन्य असामान्य गतिविधियों का सामना करना पड रहा है। भानगढ़ की तरह ही यह भी अभिशप्त लगता है इस बात में कितनी सत्यता है यह कहना तो मुश्किल है। यह सत्य है या मिथक यह मैं पाठको के विचार पर छोड़ती हूँ।



चित्र 3. खाबा का किला



चित्र 4. खाबा किले का संग्राहलय

कैसे की थी इन गुफाओं ने ब्राह्मणों की रक्षा ? - जब पालीवाल ब्राह्मण रात में गाँवों को छोड़ रहे थे, तब दीवान को खबर लग जाने के डर से इन्होंने इन्ही सुरंगों का प्रयोग किया था। सभी लोग अलग-अलग चले गये। इसीलिये कहा जाता है कि यहाँ के लोग अपना सारा खजाना कहीं छुपाकर गये हैं। किसी ने भी बाद में यदि खजाने की खोज में भीतर जाने की कोशिश की तो वह जीवित वापस नहीं लौटा।

पालीवाल ब्राह्मणों का इतिहास और आज की पीड़ा - पालीवाल ब्राह्मण अति उच्च कोटी के सच्चे ब्राह्मण थे। आज पालीवाल दो गुटो में बँट चुके हैं। कुछ लोग राजपूतों में शामिल हो गये है तो कुछ अपनी बदहाली और बदकिस्मती पर रो रहे हैं। कुलधरा को भारत की सबसे डरावनी जगहों में से एक माना जाता है। कुलधरा और खाबा गाँव रूहानी



ताकतो के कब्जे में है, जो यहाँ आने वालो को अक्सर अपनी मौजूदगी का अहसास कराती है।

लोकप्रिय मिथक के अनुसार सन 1800 ई. के दशक में गाँव मंत्री सालिम सिंह (जिसकी हवेली की सुंदरता का ऊपर वर्णन कर चुके हैं) कि अधीन एक जागीर या राज्य हुआ करता था, जो "कर" इक्टठा करके लोगों के साथ विश्वासघात किया करता था। ग्रामीणों पर लगाए जाने वाले कर की वजह से यहाँ के लोग बेहद परेशान रहते थे।

कुलधरा और खाबा गाँव अब भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा सुरक्षित तरीके से रखा जाने वाला एक ऐतिहासिक स्थल है।

जैसलमेर द्रोणी में पेट्रोलियम संभावनाएं - जैसलमेर के भीतर जैसलमेर सब-बेसिन के लोअर गोरू (सबसरफेस) तथा परिवार संरचनाओं में फोकस एनर्जी, ऑयल एंड गैस नैचुरल कारपोरेशन, ऑयल इंडिया लिमिटेड सहित विभिन्न तेल कंपनियों द्वारा पेट्रोलियम जनक चट्टानों की खोज की गई है। क्लास्टिक सैंडस्टोन तैलाशयों के रूप में काम करते हैं इनमें बैसाखी, भदेसर, परिवार, सानू और खुइयाला फार्मेशन की चट्टानें शामिल हैं।

जैसलमेर एक पेरी क्रेटार्निक बेसिन है। भूगर्भ वैज्ञानिकों के लिये जैसलमेर और कुछ द्रोणी भारत के उत्तर-पूर्व में स्थित मीसो-सीनोजोइक जीवाश्म समेटे स्तरित समुंद्री चट्टानों का समूह है। यहाँ लोअर जुरासिक पापद जीवाश्म वुड़ का अकल फासिल पार्क है जो लाठी समूह में आते हैं। फिर मिडिल-लेट जुरासिक की चट्टानें रूपसी, लुघरवा, बड़ा बाग, जैसलमेर फोर्ट बैसाखी, कुलधरा, अमर सागर एवं आबुर में मिलता है। अमोनाइट और पुराप्लवकों के आधार पर इनका सटीक आयु आकलन हुआ है और वह यूरोप की जुरासिक संरचानाओं के तात्कालिक है। यहाँ डाइनोसोरों के पैर के निशान भी मिले है। गोरू और परिवार क्रटेशियस काल की और सानू, खुइयाला, बान्दाह, शूमार टरशरी काल की चट्टानें हैं।

वैज्ञानिक विक्षेपण - एक अध्ययन से पता चला है कि भूकंप के कारण कुलधरा और अन्य पड़ोसी पालीवाल गाँव (जैसा खाबा) नष्ट हो गये। नष्ट हुए घर भूंकप से संबंधित विनाश के सबूत बयां करते हैं जैसे-धवस्त छतें, गिरे हुए लिंटल, खंभे इत्यादि। जल के गायब होते स्त्रोत, जमीनी आंदोलन या अन्य कोई अप्रत्याशित कारणों के सम्बंध में अन्य खोजों की आवश्कयकता है। शायद पृथ्वी के गर्भ से इसका कारण पता चले।

ज्योत्सना राय



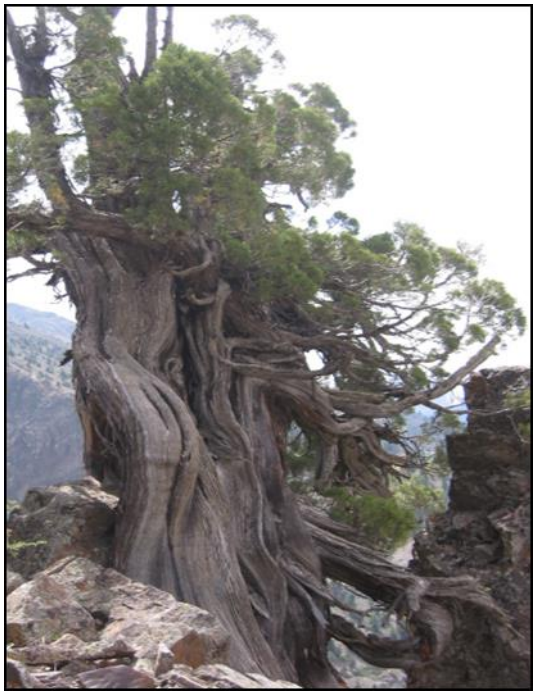
पश्चिमी हिमालय: प्राचीन वृक्षों का प्राकृतिक आवास

तरूवट (पेड़ो) प्रकृति के अमूल्यतम उपहार है, जो वन पारिस्थितिकी तंत्र रचने, विभिन्न प्रकार के जीवन रूपों को प्रभावित करने तथा पृथ्वी की रक्षा में सहायक होते हैं, इसके आलावा, कई और सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय कार्यों में सहायक होते हैं। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में भारत के कुल वन आवरण का लगभग 28% शामिल है, जो भारत को अपने कुल भौगोलिक क्षेत्र (भारत राज्य वन, 2019) के 23.34% में वन और वृक्षों के आवरण के लिए विश्व स्तर पर 10वां स्थान प्रदान करता है। परिणामत: पेड़ पर्यावरण की रक्षा करने स्थानीय व इसके बाहर रहने वाले लोगों के लिए आपूर्ति, विनियमन, रख-रखाव और सांस्कृतिक सेवाओं जैसी सेवाएं प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हिमालय पृथ्वी पर सुशोभित सर्वाधिक उच्च पर्वत श्रृंखला है। लगभग 2400 किमी से अधिक लंबाई में विस्तृत हिमालय में उपोष्णकटिबंधीय से अल्पाइन तक की विभिन्न जलवायु परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। यहाँ समुद्र तल से 60 से 6400 मीटर ऊपर पाए जाने वाली संवहनी वृक्षों के साथ दुनिया में सबसे लंबी जैव जलवायु प्रवणता है। पश्चिमी हिमालय क्षेत्र अपने विविध प्रकार के वृक्षों एवं अद्‌वितीय जलवायु स्थितियों हेतु विख्यात है। पश्चिमी हिमालय भारत के कई राज्यों में विस्तृत है, जिनमें जम्मू एवं कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड तथा पंजाब के कुछ हिस्से सम्मिलित हैं। पश्चिमी हिमालय की ऊंचाई और जलवायु क्षेत्रों की एक विस्तृत श्रृंखला मौजूद होने के कारण वनस्पति में समृद्‌ध विविधता झलकती है। मौजूदा अध्ययनों और आंकड़ों के अनुसार, पश्चिमी हिमालय में वृक्षों की लगभग 600 से 800 प्रजातियां अनुमानित हैं। इनमें समशीतोष्ण, उप-अल्पाइन और अल्पाइन वनों जैसी विभिन्न प्रकार के वनों में पायी जाने वाली देशी और अस्थानिक दोनों प्रकार की प्रजातियां सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में पायी जाने वाली कुछ सामान्य शंकुधारी वृक्ष प्रजातियों में हिमालयी देवदार (*सिडरस देवदारा*), हिमालयी ब्लू पाइन (*पाइनस वालिचियाना*), चिलगोज़ा पाइन (*पाइनस जिरार्डियना*), चीड़ पाइन (*पाइनस रॉक्सबरगाई*), बंज ओक (*क्वार्सस ल्यूकोट्रिचोफोरा*), हिमालयी बिर्च 'भोजपत्र' (*बेटुला यूटिलिस*), रोडोडेंड्रॉन (*रोडोडेंड्रॉन कैम्पैनुलटम*), सिल्वर फर (*एबिस पिंड्रो*), हिमालयी फर (*एबिस स्पेक्टेबिलिस*), हिमालयी साईप्रस (*क्यूप्रेसस टोरुलोसा*), हिमालयी येव (*टैक्सस वालिचियाना*), आदि सम्मिलित हैं। इन सभी में से कुछ तरूवटो की प्रजातियाँ जैसे कि हिमालयी देवदार, *पाइनस जिरार्डियना, पाइनस वालिचियाना, एबिस पिंड्रो* एवं हिमालयी बिर्च एक लंबे समय तक हिमालय के दुष्कर वातावरण में जीवित रहने के लिए अनुकूलित हैं। इन वृक्षों हेतु उपयुक्त जलवायु, उनकी पारिस्थितिकी, क्षेत्रीय वितरण और पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र से प्राचीनतम तरुवरों की अभिलिखित व्याख्या अग्रलिखित है।

पश्चिमी हिमालय की जलवायु : यहाँ ऊंचाई के साथ जलवायु परिवर्तित होती है। कम ऊंचाई पर, जलवायु आमतौर पर उपोष्णकटिबंधीय होती है, जिसमें गर्म ग्रीष्मकाल और हल्की सर्दियाँ होती हैं। पहाड़ों पर बढ़ती ऊंचाई के साथ-साथ तापमान में महत्वपूर्ण गिरावट सहित जलवायु शीत हो जाती है। इस क्षेत्र में अलग-अलग मौसम का अनुभव होता है। आमतौर पर ग्रीष्मकाल हल्का और सुखद होता है, विशेषकर अत्याधिक ऊँचाई पर, भारी हिमपात के सहित सर्दियाँ प्रचंड होती हैं। वसंत और शरद ऋतु में मध्यम तापमान और सुंदर पर्णसमूह के साथ वृक्षों के विकास हेतु अनुकूलित मौसम होता है। पश्चिमी हिमालय में पश्चिमी विक्षोभ के अतिरिक्त भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून का अनुभव होता है, जिस वजह से जून से सितंबर तक भारी बारिश होती है। यह वर्षा क्षेत्र की वनस्पति को प्रभावित करने एवं समग्र पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण है। समग्रत:, इसकी विविध अद्वितीय ऊंचाइयां और जलवायु परिस्थितियाँ, वृक्षों की श्रृंखला के लिए अद्वितीय एवं विविध वास प्रदान करने के साथ-साथ वृक्षों को लंबे समय तक विद्यमान रहने के लिए अनुकूलित करता है।

लंबी अवधि के जलवायु अभिलेख हेतु पश्चिमी हिमालय की उपयुक्त वृक्ष प्रजातियां:

जुनिपर पॉलीकार्पस:



जुनिपरस पॉलीकार्पस हिमाचल प्रदेश के ठंडे रेगिस्तानी क्षेत्रों की प्रमुख स्वदेशी वृक्ष प्रजातियों में से एक है, इसे स्थानीय रूप से क्षेत्र में विभिन्न घाटियों में शूर, सुरु, शुकपा या सुरुख के रूप में भी जाना जाता है। इस प्रजाति के मूल स्थान अक्सर कुछ

एकाकी वृक्षों के साथ खुले जंगल में होते हैं। यह ऊपरी किन्नौर, लाहौल और स्पीति के ठंडे रेगिस्तानी क्षेत्रों के साथ-साथ लद्दाख के कुछ हिस्सों में फैले हैं। इनकी पत्तियों को प्रायः धूप (पूजन सामग्री) के रूप में प्रयोग किया जाता है, जबकि लकड़ी का उपयोग स्थानीय रूप से ईंधन, छत-सामग्री और धूप (पूजन सामग्री) के रूप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, ये प्रजाति क्षेत्र को हवा और हिमनदी, हिमस्खलन जैसे क्षरणकारी कारकों से बचाती है। पिछले कुछ वर्षों में, जैविक दवाब में वृद्धि और प्रजातियों के अत्यधिक उपयोग से इसे गंभीर रूप से नुकसान पहुँचा है। शीत, शुष्क लाहौल स्पीति क्षेत्र से सबसे पुराने *जुनिपर पॉलीकार्पस* के पेड़ की खोज की गई है, जिसकी आयु लगभग 2023 वर्ष है।

पाइनस जिरार्डियना:



पाइनस जिरार्डियना, जिसे आमतौर पर चिलगोज़ा पाइन के रूप में जाना जाता है, मुख्य रूप से अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत और तिब्बत के ऊंचाई वाले जंगलों में पाया जाता है। *पाइनस जिरार्डियना* आमतौर पर समुद्र तल से 1800 और 3300 मीटर के बीच उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पनपने हेतु अनुकूलित है। यह सूखे, ऊबड़-खाबड़ इलाकों में भली-भांती सूखी रेतीली या चट्टानी मिट्टी में पनपता है। पेड़ अत्यधिक तापमान विविधताओं को सहन कर सकता है, इस पाइन प्रजाति की धीमी विकास दर और अपेक्षतया छोटा कद विशेषता है। सामान्यतः 12 से 15 मीटर (40 से 60 फीट) की ऊंचाई तक पहुंचता है और इसमें एक शंक्वाकार या छतरी के आकार का शीर्ष होता है। व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए इसके बीजों का अत्यधिक दोहन, चराई के कारण वास

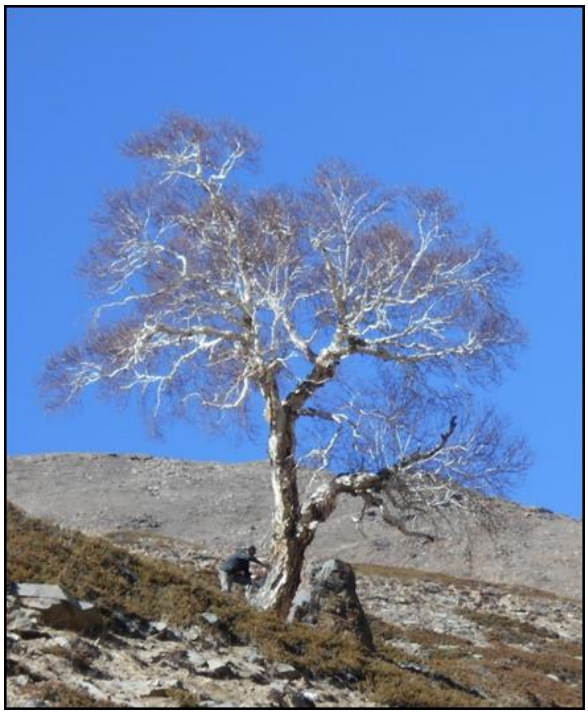
स्थान का क्षरण, और जंगली आग इनके अस्तित्व के लिए महत्वपूर्ण चुनौतियाँ पैदा करती हैं। वैज्ञानिकों ने हिमाचल प्रदेश के किन्नौर में सुशोभित *पाइनस जिरार्डियना* के प्राचीनतम वृक्ष की आयु लगभग 1556 वर्ष व्यक्त की है।

हिमालयी देवदार:



इसे विज्ञान में *सिड्रस देवदार* के रूप में जाना जाता है, पश्चिमी हिमालय का एक सदाबहार वृक्ष है, जो कि विशेषता अफगानिस्तान, पाकिस्तान, भारत और नेपाल में पाया जाता है। इस क्षेत्र में यह अपनी आकर्षक सुंदरता, मजबूत लकड़ी और सांस्कृतिक महत्व के लिए जाना जाता है। पेड़ का नाम, "देवदार," संस्कृत शब्द "देवा" और "दारू" से लिया गया है, जिसका अर्थ है "देवताओं की लकड़ी।" हिमालयी देवदार अपनी विशाल ऊंचाई के लिए जाना जाता है, जो औसतन 40 से 50 मीटर (130 से 160 फीट) लंबा होता है। इसमें क्षैतिज शाखाओं के साथ एक शंक्वाकार या पिरामिडनुमा शीर्ष होता है। हिमालयी देवदार, आमतौर पर समुद्र तल से 1500 से 3200 मीटर की ऊंचाई वाले क्षेत्रों में पनपने में सक्षम हैं। दोमट एवं रेतीली दोमट मिट्टी के कई प्रकारों में से कुछ हैं जहाँ ये पनपते हैं। ये वृक्ष प्रायः ढ़लानों पर उगते हैं तथा अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी इन्हें ग्राह्य होती है। गढ़वाल हिमालय में भैरवघाटी क्षेत्र से सबसे पुराने हिमालयी देवदार वृक्षों के होने की पुष्टि हुई है। वृक्ष-वलय विश्लेषण से उद्घाटित होता है कि ये पेड़ लगभग 1198 वर्ष पुराने हैं। जो कि पश्चिमी हिमालय से देवदार के अब तक के प्राचीनतम वृक्षों का प्रमाण है। इसके अलावा किन्नौर, हिमाचल प्रदेश में भी एक हजार वर्ष से ज्यादा पुराने हिमालयी देवदार के वृक्ष मिल जाते है।

भोजपत्र (हिमालयी बिर्च):



इसे आमतौर पर भोजपत्र या सफेद छाल वाले हिमालयी बिर्च के रूप में जाना जाता है, यह बेटुलियेसी परिवार से संबंधित वृक्ष की एक प्रजाति है। यह विशेष रूप से भारत, नेपाल, भूटान और पाकिस्तान के हिमालयी पहाड़ी क्षेत्रों में पाया जाता है। हिमालयन बिर्च के पेड़ नम, अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी के साथ शीत समशीतोष्ण से उप-अल्पाइन क्षेत्रों में पनपते हैं। ये पूर्ण सूर्य या आंशिक छाया पसंद करते हैं और अक्सर पहाड़ी क्षेत्रों में 2000 से 4500 मीटर की ऊंचाई पर पाए जाते हैं। हिमालयी बिर्च एक पर्णपाती वृक्ष है, जो सामान्यतः 20 से 25 मीटर (65 से 80 फीट) की ऊंचाई तक पहुंचता है और इसमें पतला, पिरामिड या शंक्वाकार शीर्ष होता है। इस वृक्ष की सबसे खास विशेषता इसकी सफेद पेपर की तरह पतली छाल होती है, पुराने समय में इसकी छाल का प्रयोग ग्रंथों और प्रतिलिपियों को लिखने में किया जाता था। उत्तराखंड की डर्मा घाटी से अब तक के सबसे पुराने भोजपत्र के वृक्ष की खोज की गई है। भोजपत्र वृक्ष जिसकी आयु लगभग 687 वर्ष है। इसके आलावा लाहौल स्पीति एवं कुल्लू हिमालय से 400 वर्षो से ज्यादा पुराने भोजपत्र के वृक्षों के बारे में भी पता चलता है।

पाइनस वालिचियाना: इसे आमतौर पर हिमालयन पाइन या ब्लू पाइन के रूप में जाना जाता है, यह पाइनेसी परिवार के शंकुधारी वृक्ष की एक प्रजाति है। यह अफगानिस्तान, भूटान, भारत, नेपाल, पाकिस्तान और तिब्बत सहित हिमालयी क्षेत्र में पाया जाता है। उच्च ऊंचाई वाले पर्वतीय क्षेत्रों हेतु अनुकूलित है। हिमालयन पाइन बड़ा सदाबहार वृक्ष है जो 30 से 50 मीटर (98 से 164 फीट) की ऊंचाई तक बढता है। वृक्ष का शीर्ष आकार में शंक्वाकार या बेलनाकार होता है। यह जंगलों, ढलानों और घाटियों सहित विभिन्न स्थलों में उगता है। इन्हें अच्छी जल निकासी वाली मिट्टी ग्राह्य है और अक्सर समुद्र-तल से 1800 से 4000 मीटर के मध्य ऊंचाई पर उगते हैं। लाहौल स्पीति के शालिग्राम क्षेत्र से *पाइनस वालिचियाना* के प्रचीन वृक्षों के बारे में यह ज्ञात हुआ है कि इनकी आयु लगभग 439 वर्ष है।

एबिस पिंड्रो: यह आमतौर पर समुद्र तल से 2400 से 3900 मीटर की ऊंचाई पर पर्वतीय जंगलों में पनपते हैं। यह प्रचुर मात्रा में वर्षा और हिमपात के साथ शीत एवं नम वातावरण में पनपने हेतु अनुकूलित है। पिंड्रो एक विशाल सदाबहार वृक्ष है जो 60 मीटर



(197 फीट) तक की ऊंचाई तक बढ सकता है। इसमें क्षैतिज शाखाओं सहित एक शंक्वाकार शीर्ष है, इसका तना सीधा होता है इस पर भूरे रंग की छाल होती है। इनकी पत्तियाँ सुई की तरह नुकीली तथा शाखाएं सर्पिल रूप से सुव्यवस्थित होती हैं और आमतौर पर ऊपर की तरफ गहरा हरा और नीचे चांदी-सफेद रंग का होता है। ये अक्सर अन्य शंकुवृक्ष प्रजातियों जैसे- *पाइनस वॉलिचियाना* (ब्लू पाइन) और *पाईसीआ स्मिथियाना* (मोरिंडा स्प्रूस) के संग मिश्रित जंगलों में उगते हैं। यह कम ऊंचाई वाले स्थानों पर ओक और भोजपत्र जैसे पर्णपाती वृक्षों के साथ भी पाए जाते हैं। हिमाचल प्रदेश के नारकंडा व जम्मू और कश्मीर के पहलगाम से सर्वप्रथम *एबीस पिंड्रो* के 35 से लेकर 400 वर्ष पुराने वृक्ष होने की जानकारी मिलती है। कुल्लू हिमालय से संगृहीत वृक्ष-वलय नमूनों के आयुनिर्धारण विश्लेषण से इस बात की पुष्टि होती है कि इस क्षेत्र में लगभग 350 वर्ष से भी प्रचीन *एबीस पिंड्रो* के वृक्ष विद्यमान है।

निष्कर्ष: वृक्ष हमें ऑक्सीजन देने के साथ-साथ कार्बन जमा करने, मृदा संरक्षण, जलवायु में सुधार करने और विश्व के वन्यजीवों को जीवन प्रदान करते हैं। पश्चिमी हिमालय में पाए जाने वाले वृक्ष लंबे समय के लिए दुष्कर जलवायु में जीवित रहने के लिए सक्षम हैं, जो कि एक दीर्घावधि में भूतकाल में हुए जलवायु परिवर्तन से घटित घटनाओं की उच्च रिज़ॉल्यूशन पर जानकारी देने में सक्षम हैं। जिससे कि इससे भावी जलवायु परिवर्तनों को समझने तथा नीति निर्धारण में मदद मिलेगी। अतैव हिमालय क्षेत्र में उपलब्ध वनों के साथ-साथ ऐसे प्रचीन वृक्षों का संरक्षण करना नितांत आवश्यक है।

रवि शंकर मौर्या, साधना विश्वकर्मा एवं कृष्ण गोपाल मिश्र

शैल चित्र : आदिमानव के जीवन की झाँकी

चित्रांकन मानव की स्वाभाविक प्रकृति है इसलिए बच्चे भी अक्षर या अंक लिखना सीखने से पहले ही चित्र बनाने लगते हैं, चाहे आधी-तिरछी रेखाओं का उपयोग करके या बेडौल आकृतियों के रूप में, रंग भरना तो उसके भी बाद सीखते हैं, संभवतः चित्र बनाने के लिए जिन बौद्धिक क्षमताओं की आवश्यकता होती है वह केवल मानवों में ही है (यदि 'सोशल मीडिया' पर दिखने वाले अपवादों को न गिनें, जिनमें कभी-कभी हाथी या किसी अन्य पशु को चित्र बनाते हुए दिखाते हैं).

यहाँ हम पिछले 100-200 वर्षों में बनाए गए भित्ति चित्रों की बात नहीं कर रहे, जो प्रायः महलों या भवनों की दीवारों पर बनाए गए थे, शैल चित्र, जैसा नाम से स्पष्ट है, वे चित्र हैं जिनको वनों में स्थित गुफाओं/ शैलाश्रयों की दीवारों या चट्टानों की सतह पर वहाँ रहने वाले मानवों ने बनाया था।



पृथ्वी पर मानव (*Homo sapiens*) का अवतरण 20-40 लाख वर्ष पूर्व हुआ माना जाता है, लेकिन आधुनिक मानव उतना पुराना नहीं है। आदि मानव की क्षमताएं बहुत सीमित थीं। वैसे अंगूठे का उपयोग 20 लाख वर्ष पूर्व से ही या उससे भी पहले से आरंभ हो गया था। इसलिए मानव में पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़ों को पकड़ने की क्षमता भी विकसित हो चुकी थी जो नित्य जीवन में, विशेषतः पाषाण के औज़ार बनाने, शिकार करने तथा अन्य कारणों से आवश्यक था, लेकिन संभवतः चित्रकारी के लिए अपेक्षित बौद्धिक क्षमता अभी मानव में नहीं थी।

चीन के हैन फ़ी ने (280-233 ई. पूर्व) शैल चित्रों का उल्लेख किया था, स्वीडन के पेडर एल्फ्सन ने ओस्लो में ये चित्र देखे तथा इनके बारे में लोगों को बताया। शैल चित्रों का अध्ययन लगभग डेढ़ शताब्दी से चल रहा है, ब्रिटेन के शासनकाल में भारत में भी सोहागी घाट (तत्कालीन मिर्ज़ापुर) में सबसे पहले 1867 में मेजर जर्नल अलेक्ज़ेंडर कनिंघम एवं उनके सहायक आर्चिबाल्ड कार्ल्लेयेले ने तथा कुछ वर्ष बाद जे. कॉकबर्न ने शैलचित्र देखे थे, लेकिन इस जानकारी पर अधिक लोगों ने ध्यान नहीं दिया। वर्ष 1883 में जा कर 'एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल' के एक प्रकाशन में कार्ल्लेयेले ने इसका उल्लेख किया तो फिर कॉकबर्न ने भी 1983 में इसके बारे में लिखा लेकिन अन्य अनेक देशों में शैलचित्रों को गंभीरता से लिया गया।

मानव ने कब चित्रांकन आरंभ किया इसके बारे में शैल चित्रों के अध्ययन से जानकारी मिलती है। चित्रों के विविध पक्षों को समझ कर उनके काल के विषय में भी अनुमान लगाए जाते रहे हैं। इन चित्रों में विभिन्न दूरियों पर स्थित वस्तुओं/ जीवों के सापेक्ष आकार, विभिन्न कोणों से देखे जाने पर उनकी आकृतियाँ, विभिन्न वस्तुओं के आकारों का अनुपात, रंगों का उपयोग एवं चित्रण में जटिलता कुछ ऐसे आधार हैं जिनसे बनाने वालों की बौद्धिक परिपक्वता का अनुमान लगाया जाता है। माना जाता है कि पुराने चित्रों की तुलना में नए चित्रों में परिपक्वता अधिक होगी, कहीं-कहीं पर एक चित्र के ऊपर बाद में दूसरा चित्र बना दिया जाता है, इससे शोधकर्ताओं के लिए और जटिलता हो जाती है।

भारत में लगभग सभी प्रदेशों में शैल चित्र मिलते हैं। मध्य प्रदेश इस दृष्टि से सबसे समृद्ध है। उत्तर प्रदेश में सोनभद्र, मिर्ज़ापुर, शंकरगढ़ (प्रयागराज), चंदौली जैसे स्थान हैं जहाँ आदिमानव द्वारा सृजित ऐसी बहुत-सी कृतियाँ बिखरी पड़ी हैं। समय की मार से कुछ धूमिल एवं मलिन हो चुके इन चित्रों को 'सभ्य' हो चुके मानवों ने और अधिक हानि पहुंचाई है। जो स्थान बस्तियों से दूर हैं, वहाँ शैल चित्रों का अधिक मिलना इस कारण से भी है कि वे 'सभ्य' समाज की पहुँच से परे हैं। इन्हें देखने के लिए दुर्गम स्थलों पर जाना पड़ता है।

सोनभद्र में अधिक शैलचित्र मिलना अचरज की बात नहीं है। नदियों के तटवर्ती क्षेत्र तो सदा-से सभ्यता के लिए उर्वरा भूमि रहे हैं। गंगा-यमुना हों, दजला-फ़रात हों, नील



या अमेज़न, इनके तट विश्व की महान सभ्यताओं की जन्मस्थली थे। उत्तर प्रदेश के दक्षिणी-पूर्वी भाग में तथा बिहार, झारखंड, छतीसगढ़, एवं मध्य प्रदेश से सटे सोनभद्र जिले में सोन, करमनासा, बेलन, कान्हा, रेनू तथा विजुल नदियाँ बहती हैं। विंध्या श्रेणियों एवं कैमूर की पहाड़ियों के बीच बसा, बीस लाख की जनसँख्या वाला सोनभद्र बड़ा ज़िला है जो वर्ष 1989 तक मिर्ज़ापुर जिले का अंश था, सोनभद्र का क्षेत्रफल लगभग पौने तेरह हज़ार वर्ग किलोमीटर है। इसका आधे से अधिक क्षेत्र वनाच्छादित है। इस जिले को उत्तर प्रदेश में शैलचित्रों के सन्दर्भ में सबसे धनी माना जा सकता है। मुखा-दरी, मुखाफाल, पंचमुखी, भंडार-खुर्द, दुआरा, लेखनिया-दरी, हरनी-हरना, कौवा-खोह, मुगलमारा एवं जैसे दर्ज़नों स्थान हैं जो शैल चित्रों से भरे हुए हैं उल्लेख भी किया जा सकता है कि यहाँ नल का टीला में शरीफे के अवशेष भी मिले थे।

मिर्ज़ापुर (विंडम फाल, रमना पहाड़ी एवं विजयगढ़ आदि) एवं करमनासा नदी के किनारे बसे चंदौली में भी अर्जीकलान, कौरी ख़ास, रतनपुर जैसी अनेक स्थलियाँ हैं, जहाँ शैलचित्र मिलते हैं।

आदि समाज के मानव की बहुत-सी दैनिक घटनाओं का चित्रण इन दीवारों पर दिखाई देता है। इनमें उस काल के पशु-पक्षियों, आखेट, युद्ध के दृश्य, डोली, सामूहिक नृत्य-जैसे सांस्कृतिक आयोजनों एवं अन्य अनुष्ठानों एवं गतिविधियों के चित्र हैं। अनेक स्थानों पर सजावटी एवं ज्यामितीय चित्र भी मिलते हैं, हिरन, जंगली सुअर, हाथी, भालू, दुधारु पशु, बकरी जैसे पशु सर्वाधिक चित्रित हैं। कहीं-कहीं मगरमच्छ तथा गैंडे भी चित्रित हैं। इनके आधार पर तत्कालीन प्राकृतिक परिवेश एवं समाज की झलक तो मिलती है किंतु यह चुनौती भी है, कुछ चित्र यथार्थ पर आधारित हैं जबकि कुछ में कल्पना का सम्मिश्रण है। ऐसे चित्र भी हैं जो जिराफ एवं कंगारू जैसे जीवों, कभी न देखे-सुने गए प्राणियों एवं अपरिचित, यूंएफ़ओ की तरह लगने वाले हैं। आरंभिक व्याख्याओं में कुछ शोध-कर्ताओं के द्वारा उनके आधार पर कभी-कभी कल्पना की उन्मुक्त उड़ान भी भर ली गई हैं।

इन चित्रों को शैल चित्र (Rock Art) की श्रेणी में रखा जाता है। इन चित्रों को बनाने में प्राकृतिक रंगों का उपयोग किया गया था जिनमें वनस्पति से बने रंग, दाल, गेरू (hematite), जिप्सम, चूना इत्यादि थे। कुछ स्थानों पर मिलने वालों चित्रों में हरे, नीले एवं अन्य रंग भी दिखाई देते हैं जिनको तांबे, कोबोल्ट या मैंगनीज जैसे तत्त्वों के खनिजों से बनाया गया था। उत्तर प्रदेश में मिले शैल चित्रों में इन खनिज रंगों का उपयोग नहीं मिला है। मिर्ज़ापुर में बघनखवा नाम के शैलाश्रय में संभवतः रक्त, गोंद आदि से दीवारों पर बनाए गई हाथों की छाप दिखाई देती हैं।

लगभग तीन दशाब्दी पूर्व उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्व विभाग द्वारा प्रदेश के विज्ञानियों ने उत्तर प्रदेश के बहुत से शैल चित्रों का अध्ययन किया था। दिल्ली में संस्कृति मंत्रालय के अंतर्गत 'इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र' की यौजना के अंतर्गत भारत के अनेक



प्रदेशों में शैल चित्रों के अभिलेखन की व्यापक योजना क्रियान्वित की गई थी। हाल में भी, वर्ष 2015-2018 की अवधि में, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ तथा फिर राष्ट्रीय सांस्कृतिक संपदा संरक्षण प्रयोगशाला को समन्वयन केंद्र रखते हुए चंदौली, मिर्ज़ापुर एवं सोनभद्र में शैल चित्रों को ढूँढा गया, उनके चित्र लिए गए एवं उनकी स्थितियों के निर्देशांकों को भी सूचीबद्ध किया गया। इस अध्ययन के दौरान शैल चित्रों को बनाने में प्रयोग किए गए रंगों के बहु-विधियों से विश्लेषण के परिणाम भी प्रकाशित किए गए। बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के पुरातत्त्वविदों ने भी चंदौली में अनेक नई शैल चित्र स्थलियाँ ढूंढी।

रेडियोकार्बन, ताप संदीप्ति एवं प्रकाशीय उत्तेजित संदीप्ति (Thermoluminescence तथा Optically Stimulated Luminescence), यूरेनियम-थोरियम श्रेणी, कोस्मोजेनिक नाभिक आदि विधियों का इनके आयु निर्धारण में उपयोग होने लगा है। कुछ लोगों ने फ्रांस में लकड़ी के कोयले से बने शौवे -पों-दार्क में मिले गैंडों के दो रेखाचित्रों की आयु 30,000 वर्ष से अधिक निश्चित की थी। स्पेन में आल्ट-मीरा, एल-कैस्टीजो (El Castillo) तथा टीटो-बुस्टीजो (Tito-Bustillo) में शैल चित्रों की आयु यूरेनियम-थोरियम विधि के आधार पर लगभग 35 से 40 हज़ार वर्ष निकाली थी। ये स्थली यूनिसेफ की विश्व धरोहर सूची में है, वैसे ही, जैसे डॉ. विष्णु वाखनकर द्वारा मध्य प्रदेश में खोजी गई भीमबेटका स्थली। इन अध्ययनों के आधार पर अब यह माना जाता है कि शैल चित्र कम-से-कम 40 हज़ार वर्षों से बनाए जा रहे हैं। विंडहम फाल (मिर्ज़ापुर) के शैल चित्रों को ब्रिस्टल विश्वविद्यालय (इंग्लैंड) ने 12 हज़ार वर्षों से पुराना आँका है। हाल के एक शोध में कुछ शैल चित्रों के 65 हज़ार वर्ष पुराने होने का मत भी व्यक्त किया गया है यद्यपि यह परिणाम पूर्णतः असंदिग्ध नहीं हैं। यदि चित्र के ऊपर की केल्साइट पर्त की आयु निकाली जाती है तो चित्र उससे पुराना है।

स्पष्ट है कि शैलचित्रों में मानव सभ्यता की हज़ारों वर्ष की अवधि में हुए परिवर्तनों के हस्ताक्षर हैं। इनमें मानव सभ्यता का इतिहास छिपा है। इनका नष्ट होना इस भू-भाग में सभ्यता के विकास की गाथा की पुस्तक के कुछ पन्ने फाड़ देने जैसा होगा, अतैव यह महत्त्वपूर्ण है कि इनकी सुरक्षा हेतु उचित प्रबंधन किया जाए।

पर्यटन की दृष्टि से भी शैल चित्रों का महत्त्व बहुत है। इसलिए भी इनका संरक्षण आवश्यक है। वाराणसी बहुत बड़ा पर्यटन केंद्र है जहाँ देश ही नहीं अपितु विदेशों से भी बड़ी संख्या में लोग आते हैं, काशी के सौंदर्याकरण के बाद तो यह संख्या और बढ़ गई है। वहाँ से लगभग 100 किमी की दूरी पर, अधिकाँश दूरी तक अच्छे सड़क मार्ग से जुड़े स्थित इन शैल चित्रों की स्थलियों को पर्यटकों के लिए आकर्षण के रूप में विकसित किया जा सकता है। एक दिन के अंदर वाराणसी से आरंभ करके, इन शैल चित्रों को देखकर उसी दिन पर्यटक वापिस वाराणसी पहुँच सकता है।



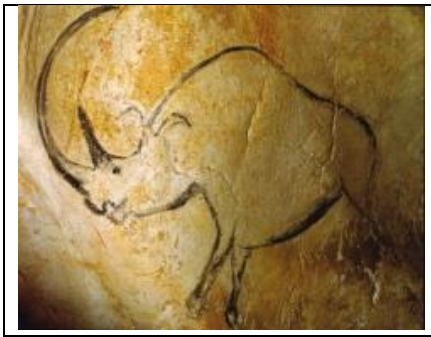
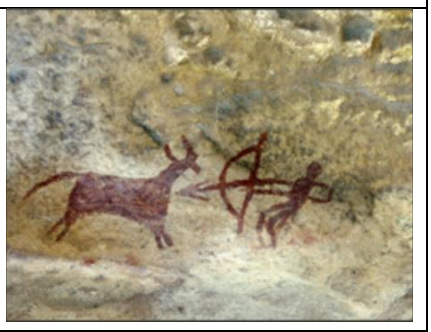
आने वाले दिनों में एक आवश्यकता यह भी है कि शैल चित्रों का अध्ययन केवल उनके चित्र खींचने, स्थितियों के जीपीएस पर आधारित निर्देशांक (Geographical-Positioning- System- based Coordinates) एकत्र करने एवं उनके आधार पर तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों, पशु-पक्षियों अथवा अन्य गतिविधियों का अनुमान लगाने तक सीमित न हो, यह आवश्यक है कि निम्न बिंदुयों पर भी ध्यान केन्द्रित किया जाए:

1. विविध वैज्ञानिक विधियों से आयु-निर्धारण।
2. शैल चित्रों के पास मिलने वाले पाषाण के बने औज़ार
3. समीपवर्ती मिट्टी में दबे हुए पुरापरागाणु एवं लकड़ी के कोयले के नमूने
4. प्रयुक्त रंगों के रासायनिक एवं क्रिस्टलीय-विश्लेषण।
5. ऐसे शैल चित्रों को ढूँढने के प्रयास जिनमें वानस्पतिक रंग, चारकोल जैसे पदार्थों का उपयोग हुआ हो क्योंकि उनमें जैविक (प्रकाश संश्लेषण-जनित) कार्बनिक पदार्थ उपस्थित होंगे तथा उनकी एक्सीलेरेटर मास स्पेक्ट्रोमेट्री (AMS) रेडियोकार्बन विधि से आयु निकाली जा सकती है.
6. जहाँ पर ऐसे उत्कीर्ण रेखा चित्र हैं जिनमें कैल्साइट जमा हो गया है (जैसे आंध्र में कर्नूल ज़िले में), उनको पहचानना तथा यदि केल्साइट पर चित्र बने हों या चित्र पर केल्साइट जमा हुआ हो, उन नमूनों का संग्रहण एवं उनका यूरेनियम-थोरियम श्रेणी जैसी विधियों से आयु-निर्धारण।
7. शैल चित्रों का संरक्षण तथा सावधानी पूर्वक उनका पर्यटन के केन्द्रों के रूप में विकास।

जहाँ फ्रांस, स्पेन, उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका, अंगोला, ऑस्ट्रेलिया आदि के शैल चित्रों का विषद अध्ययन हुआ है, वही भारत में स्थित शैल चित्रों के अध्ययन बहुत सीमित हैं। शैल चित्रों का वैज्ञानिक अध्ययन, विशेषतः आयु-निर्धारण की दृष्टि से, अपार संभवनाओं से भरा हुआ शोध क्षेत्र है। विविध विषयों के विशेषज्ञ मिल कर ही इन की प्राचीनता का पता लगाने में सफल हो पाएंगे।

(लेखक 2015 से 2018 तक उत्तर प्रदेश की शैल चित्र अभिलेखन समिति के समन्वयक रह चुके है)

चन्द्र मोहन नौटियाल

	
चित्र 1 : *राइनॉसिरोस* शैल चित्र	चित्र 2 : शैल चित्रों की खोज
	
चित्र 3 : हरना हरनी में सजावटी चित्र	चित्र 4 : युद्ध का दृश्य
	
चित्र 5 : बघ्मां शैलाश्रय में पंजे	चित्र 5 : धनुष बाण से हिरन का शिकार
	
चित्र 7 : चारकोल से बने गैंडे, शौवे गुफा, फ्रांस	चित्र 8 : शैल चित्र



प्रतिष्ठित भारतीय महिला विज्ञानियों का परिचय तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी क्षेत्र में भारतीय महिलाएं

11 फरवरी 2023 को विज्ञान में महिलाओं और लड़कियों से संबंधित आठवां अंतर्राष्ट्रीय दिवस मनाया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 11 फरवरी को प्रत्येक वर्ष ये दिवस मनाया जाता है। मार्च 2011 में महिलाओं की स्थिति को लेकर संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक प्रस्ताव बनाया, जिसका उद्देश्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी में महिलाओं और लड़कियों की भागीदारी को प्रोत्साहित करना था। साथ-ही पूर्ण रोजगार और अच्छे कार्य हेतु महिलाओं की समान पहुँच को बढ़ावा देने को लेकर शिक्षण और प्रशिक्षण प्रदान करना था। इस संबंध में 20 दिसंबर 2013 को महासभा ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचार पर एक संकल्प अपनाया। इस संकल्प में इस बात को दोहराया गया कि महिलाओं और लड़कियों के सशक्तिकरण और लैंगिक समानता हेतु विज्ञान और प्रौद्योगिकी में उनकी पूर्ण और समान पहुंच होनी चाहिए। गौरतलब है कि इस वर्ष का विषय IDEAS यानी इन्नोवेट डेमोंस्ट्रेट एलीवेट एडवांस एंड सस्टेन है, जिसका उद्देश्य विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित क्षेत्रों में महिलाओं की समान पहुंच और भागीदारी को सुनिश्चित करना है। इस संबंध में 2030 के सतत् विकास लक्ष्य और इसके 17 वैश्विक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु अंतर्राष्ट्रीय समुदाय और विज्ञान के क्षेत्र में शामिल महिलाओं के बीच एक लिंक स्थापित करना है, साथ-ही उनके बीच एक व्यवस्थित और महत्वपूर्ण तरीके से ज्ञान और विशेषज्ञता का सही दिशा में प्रयोग करना है। प्राचीन काल से ही भारत विज्ञान एवं गणित के क्षेत्र में अपने समृद्ध योगदान हेतु प्रसिद्ध रहा है। इस संबंध में संख्या और दशमलव प्रणाली के रूप में शून्य की खोज भारत में प्रतिभाशाली गणितज्ञों की दुनिया को अनमोल देन है। भारत का गौरवमयी इतिहास कई महान विज्ञानियों के उदाहरणों से ओत-प्रोत है जिन्होंने भारत सहित दुनिया को बहुत कुछ दिया है। दरअसल, इनमें कई महिला विज्ञानी हैं, जिन्होंने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन महिला विज्ञानियों का जीवन उन सभी महिलाओं और लड़कियों हेतु रोल मॉडल है, जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाना चाहती हैं, तो आइए हम भारत की इन महत्वपूर्ण महिला विज्ञानियों और उनके योगदान की चर्चा करते हैं।

एडावलेठ कक्कट जानकी अम्माल एक वनस्पतिशास्त्री थीं, जिन्होंने पादप प्रजनन, साइटोजेनेटिक्स और फाइटोजियोग्राफी पर कार्य किया। उन्होंने 1921 में प्रेसिडेंसी कॉलेज से वनस्पति विज्ञान में ऑनर्स की डिग्री प्राप्त की। गौरतलब है कि 1900 के दशक में



अम्माल ने वनस्पति विज्ञान को चुना जो महिलाओं हेतु उस समय एक असामान्य पसंद थी। अम्माल 1977 में पद्मश्री पुरस्कार प्राप्त करने वाली पहली भारतीय विज्ञानी थीं, जो भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में महानिदेशक के प्रतिष्ठित पद पर भी आसीन हुईं। 80 वर्ष की आयु में जानकी अम्माल ने जैव विविधता के समृद्ध केंद्र के संरक्षण का आवाहन करने हेतु एक महत्वपूर्ण प्रयास किया। पहली भारतीय महिला वनस्पतिशास्त्री 'अम्माल' एक प्रतिभाशाली पादप विज्ञानी के रूप में इतिहास के पन्नों में अपनी अमिट छाप छोड़ती हैं। आज भी उगाई जाने वाली कई संकर फसल प्रजातियों को उन्होंने विकसित किया। जानकी अम्माल ने गन्ना और बैंगन के अध्ययन का भारतीय वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया, इसमें मीठे गन्ने की किस्में शामिल हैं जिन्हें भारत विदेशों से आयात करने के बजाय अपनी भूमि पर उगा रहा है।

इसके बाद भारत की समृद्ध विज्ञानी और चिकित्सा क्षेत्र में **आनंदीबाई जोशी** का नाम सबसे आगे है। चिकित्सक आनंदीबाई जी का पूरा नाम आनंदीबाई गोपाल राव जोशी था, ये पहली महिला डॉक्टर हैं, जिन्होंने पश्चिमी चिकित्सा को भारत में प्रतिष्ठापित किया। डॉ. जोशी ने संयुक्त राज्य अमेरिका में रहकर पश्चिमी चिकित्सा विषय में 2 वर्ष की डिग्री प्राप्त की, साथ-ही इन्हें चिकित्सा विषय में स्नातक करने वाली भारत की तत्कालीन मुंबई प्रेसिडेन्सी की प्रथम महिला होने का भी गौरव प्राप्त है। इन्होंने भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका में चिकित्सा क्षेत्र में आगे बढ़ने हेतु कई महिलाओं को प्रेरित किया। इस संबंध में आनंदीबाई की चिकित्सा क्षेत्र में एक समृद्ध विरासत है।

तदोपरांत नाम आता है **कमला सोहोनी** का, जो भारतीय जैव रसायनज्ञ थीं, तथा 1939 में विज्ञान अनुशासन विषय में पी-एच.डी. प्राप्त करने वाली पहली भारतीय महिला बनीं। विज्ञानी अनुशासन में पी-एच.डी. की डिग्री हासिल करने वाली कमला सोहोनी ने भारतीय विज्ञान संस्थान (IISC) में शोध अध्येता हेतु आवेदन किया तथा उन्हें केवल इसलिए अस्वीकार कर दिया गया क्योंकि वह महिला थीं। भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगालुरु में उनके प्रवेश और कार्य ने इतिहास में पहली बार महिलाओं को स्वीकार किए जाने का मार्ग प्रशस्त किया। गौरतलब है कि वह प्रोफेसर सी. वी. रमन की पहली महिला शोध छात्रा थीं, जो तत्कालीन आई.आई.एस.सी. निदेशक थे। उनके उत्कृष्ट प्रदर्शन के कारण डॉ रमन ने उन्हें और भी शोध करने को प्रेरित किया। आगे चलकर उन्होंने अपने शोध में पाया कि पौधे की प्रत्येक कोशिका में एंजाइम साइटोक्रोम 'सी' होता है, जो सभी पौधों की कोशिकाओं के ऑक्सीकरण में विद्यमान होता है।

इस कड़ी में अगला नाम पश्चिम बंगाल में जन्मी **असीमा चटर्जी** का है, जो जैविक रसायन की विशेषज्ञ थीं। किसी भारतीय विश्वविद्यालय से पहली महिला डॉक्टर ऑफ साइन्स की डिग्री प्राप्त करने का श्रेय असीमा चटर्जी को प्राप्त है, जो विज्ञान



अनुसंधान की देखरेख करने वाली प्रमुख संस्था भारतीय विज्ञान कांग्रेस की महासचिव के रूप में चयनित पहली महिला थीं। उन्होंने 1936 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्कॉटिश चर्च कॉलेज से रसायनविज्ञान में स्नातक किया तत्पश्चात शोध किया। इनका शोध कार्बनिक रसायन और फाइटोमेडिसिन के क्षेत्र में कार्य हेतु विख्यात है। भारतीय रसायनज्ञ के रूप में कार्बनिक रसायन और फाइटोकेमेस्ट्री यानी पौधों से प्राप्त रसायन के क्षेत्र में उनके उल्लेखनीय कार्य हैं। उनके उत्कृष्ट कार्यों में विंका अल्कलॉइड, जो पेरिविंकिल से प्राप्त होता है तथा कैन्सर विरोधी गुणों हेतु विदित है, पर शोध शामिल है। इसके अलावा, ये मिरगीरोधी और मलेरिया रोधी दवाओं के क्षेत्र में योगदान हेतु भी प्रसिद्ध हैं।

इसके बाद बात करते हैं **राजेश्वरी चटर्जी** की, जो एक महान भारतीय विज्ञानी व शिक्षाविद थीं। इन्हें कर्नाटक राज्य की पहली महिला इंजीनियर होने का गौरव प्राप्त है। डॉक्टर राजेश्वरी को 1946 में विदेश में अध्ययन करने हेतु सरकारी छात्रवृत्ती मिली। इन्होंने अमेरिका के प्रसिद्ध मिशिगन विश्वविद्यालय के इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग विभाग से स्नाकोत्तर उपाधि प्राप्त की। डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त करने के बाद वह भारत वापस आ गईं और भारतीय विज्ञान संस्थान में इलेक्ट्रिकल कम्युनिकेशन इंजीनियरिंग विभाग में अपने पति के साथ संकाय सदस्य के रूप में पदभार संभाला। आई.आई.एस-सी. की संकाय सदस्य के रूप में इन्होंने अपने पति के साथ माइक्रोवेव अनुसंधान प्रयोगशाला स्थापित की जहां इन्होंने माइक्रोवेव इंजीनियरिंग पर उल्लेखनीय कार्य किया।

अब इसी श्रृंखला में एक और बड़ा नाम सामने आता है **कल्पना चावला** का, निश्चित रूप से इस नाम से आप परिचित ही होंगे। कल्पना चावला भारतीय मूल की अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री और एयरोस्पेस इंजीनियर थीं। कल्पना चावला अंतरिक्ष में कदम रखने वाली भारतीय मूल की प्रथम अंतरिक्ष यात्री हैं। कल्पना चावला 1982 में संयुक्त राज्य अमेरिका चली गईं और 1984 में आर्लिंग्टन में टैक्सास विश्वविद्यालय से एयरोस्पेस इंजीनियरिंग में मास्टर आफ साइंस की डिग्री प्राप्त की। इसके अलावा, 1986 में उन्होंने दूसरी बार मास्टर की डिग्री प्राप्त की। आगे चलकर इन्होंने कोलोराडो विश्वविद्यालय से 1988 में पी-एच.डी. की। इन्होंने पहली बार 1997 में एक मिशन विशेषज्ञ और प्राथमिक रोबोटिक आर्म ऑपरेटर के रूप में स्पेस शटल कोलंबिया में उड़ान भरी। चावला उस चालक दल-सदस्यों में से एक थीं, जिनकी 1 फरवरी 2003 को अंतरिक्ष यान कोलंबिया आपदा में मृत्यु हो गई थी। यह दुर्घटना अंतरिक्ष यान के पृथ्वी के वायुमंडल में लौटते समय हुई।

इसके बाद बात करें तो स्त्री स्वास्थ्य के मामलों में **इंदिरा हिंदुजा** को कौन नहीं जानता डॉक्टर इंदिरा हिंदुजा एक भारतीय स्त्री रोग विशेषज्ञ, प्रसूति विशेषज्ञ और बांझपन विशेषज्ञ हैं। इन्होंने भारत को गेमेटिक इंट्राफैलोपियन ट्रांसफर तकनीक) GIFT(दी, जिसके परिणामत: 04 जनवरी 1988 को भारत के पहले गिफ्ट बच्चे का जन्म हुआ। इससे पूर्व इन्होंने 06 अगस्त 1986 को के.ई.एम. अस्पताल में भारत के पहले टेस्ट-ट्यूब



बेबी को जन्म देने का सफल परीक्षण किया था। गौरतलब है कि डॉक्टर इंदिरा हिंदुजा को रजोनिवृत्ति और समय से पहले डिंब ग्रंथि विफलता के रोगियों हेतु एक डिम्बाणुजन कोशिका दान तकनीक विकसित करने का श्रेय दिया जाता है, इस परिपेक्ष्य में 24 जनवरी 1991 को इस तकनीक से देश का पहला बच्चा पैदा हुआ।

एक समुद्रविज्ञानी के रूप में **डॉ0 अदिति पंत** का नाम नामी गिरामी-समुद्र विज्ञानियों में से एक है। डॉ. अदिति भू-विज्ञान और समुद्रविज्ञान का अध्ययन करने हेतु भारतीय अभियान के एक भाग के रूप में 1983 में अंटार्कटिका जाने वाली पहली भारतीय महिला थीं। जब वह पुणे विश्वविद्यालय में बी.एससी. की छात्रा थीं, तब उन्हें एलिस्टर हार्डी की पुस्तक 'द ओपन सी' पढ़ने के बाद ओशनोग्राफी लेने की प्रेरणा मिली। उन्हें हवाई विश्वविद्यालय में समुद्रविज्ञान में एम.एससी. का अध्ययन करने हेतु अमेरिकी सरकार से छात्रवृत्ति भी मिली तथा वेस्टफील्ड कॉलेज, लंदन विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। उनका शोध प्रबंध समुद्री शैवाल के शारीर-रचना विज्ञान विषय पर आधारित है, इसके अलावा उन्होंने राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान, राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला में भी कार्य किया।

आप मिसाइल मैन के बारे में तो जानते ही होंगे, लेकिन आप मिसाइल वूमेन से अनभिज्ञ हैं दरअसल, **टेसी थामस** भारत की मिसाइल वूमेन के नाम से विख्यात हैं। टेसी थॉमस ने लंबी दूरी की मिसाइल प्रणालियों हेतु मार्गदर्शन योजना प्रशस्त की, जिसे सभी अग्नि मिसाइलों में प्रयोग किया जाता है। मिसाइल तकनीक में डॉक्ट्रेट के साथ वह भारत में मिसाइल परियोजना का नेतृत्व करने वालीं पहली भारतीय महिला विज्ञानी हैं। वह 1988 में रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डी.आर.डी.ओ.) में पदासीन हुईं और उन्होंने मार्गदर्शन प्रक्षेपण अनुकरण और मिशन डिजाइन में योगदान दिया। उन्हें 2001 में आत्मनिर्भरता में उत्कृष्टता हेतु डी.आर.डी.ओ. अग्नि पुरस्कार से सम्मानित किया गया साथ-ही वह कई फेलोशिप और मानद डॉक्ट्रेट की प्राप्तकर्ता भी हैं।

अब बात करते हैं **ऋतु करिधाल** की। रॉकेट वूमेन ऑफ़ इंडिया के रूप में विख्यात ऋतु करिधाल चंद्रयान-2 मिशन की निदेशक थीं। इन्हें भारत की सबसे महत्वाकांक्षी चंद्रयान-2 मिशन परियोजना में उत्कृष्ट भूमिका हेतु सम्मानित किया गया। उन पर स्वायत्तता प्रणाली के विवरण और निष्पादन हेतु उत्तरदायित्व था, वह स्वतंत्र रूप से अंतरिक्ष में उपग्रह के कार्य को संचालित करती थीं और सुधार हेतु उचित परामर्श देती थीं। एयरोस्पेस इंजीनियर ऋतु करिधाल 2007 में इसरो में शामिल हुईं, वह भारत के मार्स ऑर्बिटर मिशन (MOM) मंगलयान की उपसंचालन निदेशक थीं। उन्हें 2007 में भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉक्टर एपीजे अब्दुल कलाम से इसरो युवा विज्ञानी का पुरस्कार भी मिला।



आइए, अब बात करते हैं विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भारतीय महिलाओं की स्थिति की। गौरतलब है कि डी.एस.टी. यानी विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने एक सर्वेक्षण किया, डी.एस.टी. द्वारा संकलित डाटा से विदित होता है कि 2018-19 में अनुसंधान और विकास परियोजनाओं में 28 प्रतिशत महिलाएं सम्मिलित थीं, जो 2000-01 के आंकड़ों से 13 प्रतिशत अधिक है। दरअसल, यह वृद्धि सरकार द्वारा की गई विभिन्न पहलों या योजनाओं के कारण हुई। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग ने 2030 तक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को 30 प्रतिशत तक बढ़ाने का लक्ष्य रखा है। इस संबंध में सी.एस.आई.आर. यानी विज्ञानी और औद्योगिक अनुसंधान विकास परिषद की पहली महिला महानिदेशक के रूप में डॉ. (श्रीमती) एन. कलैसेल्वी की वर्तमान नियुक्ति विज्ञान अनुसंधान में महिलाओं की भागीदारी को प्रतिबिंबित करती है। अनुसंधान एवं विकास में महिला प्रधान अन्वेषकों की संख्या 2016-17 में 941 हो गई है, जबकि 2000-01 में यह संख्या मात्र 232 थी। इस क्षेत्र में महिला शोधकर्ताओं की संख्या 2015 के प्रतिबिंबित 13.9 प्रतिशत से बढ़कर 2018 में 18.7 प्रतिशत हो गई है, हालांकि समग्रत: यह आंकड़े वृद्धि की प्रवृत्ति प्रदर्शित कर रहे हैं, लेकिन जब प्राकृतिक विज्ञान, स्वास्थ्य और कृषि के क्षेत्र में महिला शोधकर्ताओं से तुलना की जाए तो विज्ञान और प्रौद्योगिकी में यह संख्या कम ही है।

इसी तरह उच्च शिक्षा पर ए.आई.एच.सी. यानी अखिल भारतीय सर्वेक्षण 2019 के अनुसार, स्नातक स्तर पर विज्ञान शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी क्रमशः 53 प्रतिशत और स्नातकोतर स्तर पर 55 प्रतिशत है, लेकिन डॉक्ट्रेट स्तर पर महिलाएं 44 प्रतिशत व पुरुष 56 प्रतिशत हैं। ध्यातव्य है कि भारत में विज्ञान शोधकर्ताओं की संख्या 2014 में 30000 से दोगुनी होकर 2022 में 60000 से अधिक हो गई है, बायोटेक्नोलॉजी में सबसे ज्यादा 40 प्रतिशत और मेडिसिन में 35 प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी है। इसी तरह विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के 97 विज्ञानियों में 35 महिलाएं हैं, इसमें-भी बड़ी उपलब्धि यह है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग के 18 में से 11 डिवीजन महिलाओं के नेतृत्व में हैं। आइए इस संबंध में अब आगे की राह या निष्कर्ष पर बात करते हैं, भारत दुनिया के कुछ ही चुनिंदा देशों में है, जहां महिला विज्ञानियों और इंजीनियरों की संख्या कम है, हालांकि, पिछले कुछ वर्षों में STEM यानी साइन्स टेक्नोलॉजी इंजीनियरिंग और गणित में वृद्धि देखने को मिली है। इस संबंध में STEM में महिलाओं का अल्प प्रतिनिधित्व और असमानता का कारण समाज में गहरी जड़ें जमा चुके सामाजिक कलंक, भेदभाव, पूर्वाग्रह और सामाजिक मापदंड हैं, जिस वजह से इन्हें प्राप्त होने वाली शिक्षा और इनके द्वारा अध्यनीय विषयों की गुणवत्ता प्रभावित होती है। इसमें यह विचलन ना केवल एक चूके हुए अवसर को दर्शाता है, बल्कि समाज में असंतुलन को भी उजागर करता है जहां एक लिंग को सीमाओं और प्रतिबंधों से दबा दिया जाता है। भारत में STEM में कुल स्नातकों में से लगभग 43 प्रतिशत महिलाएं हैं, जो



तुलनात्मक दृष्टिकोण से बेहतर है, फिर भी अनुसंधान विकास संस्थानों और विश्वविद्यालयों में केवल 14 प्रतिशत विज्ञानी, इंजीनियरों और प्रौद्योगिकीविदा है। STEM में लैंगिक समानता का आकलन करने हेतु एक व्यापक चार्टर और रूपरेखा विकसित करने हेतु एक पायलट प्रोजेक्ट GATI (जेंडर एडवांसमेंट फॉर ट्रांसफरिंग इंस्टीट्यूशन) की घोषणा की गई, परिणामत: यह न केवल महिलाओं को उनके लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होगा, बल्कि विज्ञान स्वयं उनके प्रतिनिधित्व से लाभान्वित होगा। शिक्षा न केवल समस्या समाधान करती है अपितु अगली पीढ़ी को नवप्रवर्तक भी बनाती है। नि:संदह भविष्य में भारतीय की महिलाएं इस क्षेत्र में और भी उन्नत मुकाम हासिल करेंगी।

सदानन्द

भावी जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से केरल अवसादी द्रोणी की महत्ता

केरल अवसादी द्रोणी भारत की दक्षिण-पश्चिमी सीमा पर स्थित है। यह पेरिक्राटोनिक कोंकण-केरल द्रोणी का एक हिस्सा है, जो दक्षिण-पश्चिमी समुद्र तट के समानांतर लगभग 600 किमी तक फैला हुआ है। यह उत्तर में टेलिचेरी आर्क बेसमेंट से, दक्षिण में हिंद महासागर तक, पश्चिम में चागोस-लक्षद्वीप रिज से और पूर्व में पश्चिमी घाट की खड़ी ढलानों से घिरा है। इस भू-भाग का भारतीय भू-विज्ञान में अद्वितीय स्थान है साथ ही यहाँ अनेक सुन्दर चट्टानें, भू-विविधता और मनमोहक समुंद्र तटों के कारण यह अंतरराष्ट्रीय स्तर का लोकप्रिय पर्यटन स्थल भी है। खासतौर पर वर्कला क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति और समुद्र तट के साथ-साथ लगभग समानांतर रूप से अनावृत लैटेरिटिक चट्टानों के कारण, यहाँ अद्भुत प्राकृतिक सुंदरता का दृश्य प्राप्त होता है। महत्वपूर्ण भूगर्भीय क्षेत्रों को जियोपार्क में परिवर्तित करने की सलाह देनेवाला, संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रशस्त सतत विकास लक्ष्यों (एस॰डी॰जी॰) की कार्यसूची 2030 के अनुसार भी यह क्षेत्र वैश्विक जियोपार्क होने के मानदंडों को पूरा करता है| वर्कला क्षेत्र में और भी कई भू-विरासत स्थलों तथा सामाजिक-सांस्कृतिक-ऐतिहासिक स्थल मौजूद हैं, जो प्रस्तावित वर्कला के जियोपार्क क्षेत्राधिकार के अंतर्गत आते हैं।

मूलतः इस क्षेत्र में अनावृत शैलखंड सीनोज़ोइक काल के हैं। इनमें वर्कला तट पर व निकटवर्ती कोल्लम जिले के भूखंडों में अनावृत चट्टानों का वर्गीकरण वर्कली शैल-समूह के रूप में किया गया है जो कि मायोसिन (नेओजीन) युग के शैल-समूह है। इनमें कोल्लम जिले के क्विलॉन गाँव के निकट अनावृत चट्टानों को क्विलॉन फार्मेशन के टाइप सेक्शन



के रूप में तथा वर्कला तट पर अनावृत चट्टानों को वर्कली फार्मेशन के टाइप सेक्शन के रूप में भी जाना जाता है। भू-स्तरिकी (स्ट्रैटिग्राफ़िक) के अनुसार क्विलॉन फार्मेशन में शेल व चूना पत्थर तथा वर्कली फार्मेशन में लिग्नाइट के लेंस के साथ-साथ कार्बोनेशियस शेल और बलुआ पत्थर भी पाया जाता है। इन दोनों फार्मेशन की ऊपरी परतें क्षरण के कारण लैटेरिटिक चट्टानों में परिवर्तित हो गई हैं। वर्कला तट पर व निकटवर्ती कोल्लम जिले के भूखंडों में अनावृत चट्टानों का पुरापरागाणविक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में इन चट्टानों का डायनोफ्लैजलेट सिस्ट (डाइनोसिस्ट्स) और कैलकेरियस नैनोफॉसिल्स की सहायता से आयु निर्धारित की गई और निष्कर्षित हुआ कि यह मध्य माओसीन समय काल के आस-पास के निक्षेप हैं।

रोचक तथ्य यह है कि मध्य माओसीन काल (17-15 मिलियन वर्ष) भू-मंडलीय वैश्विक रूप से अतितापीय घटनाक्रम हेतु विख्यात है। विभिन्न प्रकार के अध्ययनों से पता चला है कि उस समय भू-मंडलीय वैश्विक औसत तापमान, वर्तमान के औसत तापमान से 3-4 डिग्री सेल्सियस अधिक था। इसके साथ-ही, उपमहाद्वीपों का भौगोलिक वितरण भी वर्तमान स्थिति से मेल खाता हुआ ही था। भारत के दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र में केरल ही एक मात्र अवसादी द्रोणी है जिसमें इस काल के आस-पास के निक्षेप हैं। अतः केरल अवसादी द्रोणी पुराजलवायु के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है।

एशियाई मानसूनी परिवर्तनशीलता, वैश्विक जलवायु प्रणाली का एक अभिन्न अंग होने के नाते दुनिया भर में मानव आबादियों की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों को अत्यधिक प्रभावित करता है, जिसमें विशेष रूप से वर्षा एक प्रमुख घटक है। इस संबंध में, सार्वभौमिक चिंता का प्रश्न उठता है कि मानसून प्रणाली, ग्लोबल वार्मिंग के आधुनिक परिदृश्य में कैसी प्रतिक्रिया करेगी? क्या यह भविष्य में मंद होगी या तीव्र होगी तथा जीव-जन्तु इस पर कैसे प्रतिक्रिया करेंगे? इन सभी बिन्दुओं पर केरल क्षेत्र में अनावृत मायोसिन (नेओजीन) युग के शैल-समूह का अध्ययन प्रकाश डाल सकता है। इसी अवधारणा के आधार पर भी वर्कला तट पर व निकटवर्ती कोल्लम जिले के वर्कली शैल-समूह के भूखंडों में अनावृत चट्टानों के पुरापरागाणविक अध्ययन में कुछ रोचक तथ्य पाये गए हैं। इनमें मध्य-मायोसीन जलवायु अनुकूलतम (Mid-Miocene Climate Optimum) के आरंभिक चरण के परागकण के संकलन में उच्च तापमान तथा अधिक आर्द्रता में पाये जाने वाले पादपों के परागकण पाये गए हैं। इनमें अति तापीय (मेगाथर्मल) व उच्च आर्द्र-वातावरण में पाए जाने वाले बॉम्बेकेसी, टेनोलोफोनेसी, डिप्टरोकार्पेसी कुल के परागकणों का प्रभुत्व है। इसके अतिरिक्त, इनमें मैंग्रोव तथा बैक-मैंग्रोव जिसमे मुख्य रूप से एरेकेसी, रइज़ोफोरसी, एविसीनिएसी और कोम्ब्रिटेसी जैसे कुल भी सम्मिलित हैं। व्यापक दृष्टिकोण से, केरल क्षेत्र के शैल-समूह का पुरापरागाणविक अध्ययन मध्य मायोसिन में उच्च तापमान व अति आर्द्र जलवायु में विकसित होने वाले उष्णकटिबंधीय वर्षा वनों के बहुतायत में होने के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। आईपीसीसी की चौथी रिपोर्ट



(2007) के अनुसार 21वीं सदी के अंत तक वैश्विक तापमान चार डिग्री सेल्सियस तक बढ़ने का अनुमान है। यदि भविष्य में ऐसी वैश्विक स्थिति बनती है तो केरल के मध्य मायोसिन शैल-समूह से पुनर्संरचित वनस्पति हमें भविष्य में ग्लोबल वार्मिंग के कारण उष्णकटिबंधीय वनस्पतियों में परिवर्तन के परिदृश्य की संभावित परिस्थिति के आंकलन में सहायक सिद्ध होगी|

इस अध्ययन के आंकलन के आधार पर 3-4 डिग्री सेल्सियस तक वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि अधिक वर्षा का उष्णकटिबंधीय वनों की जैव-विविधता व संरचना पर कोई बहुत ज्यादा बदलाव देखने को नहीं मिलेगा| अतैव, केरल के शैल-समूह से परागा संरचना के आधार पर जलवायु परिवर्तन के विभिन्न घटकों की पुनर्संरचना तथा जीव-जन्तु पर इसके परिणामी प्रभाव और प्रतिक्रिया को ग्लोबल वार्मिंग के सापेक्ष समझना महत्वपूर्ण है।

योगेश पाल सिंह एवं पूनम वर्मा

अरुणाचल प्रदेश: इतिहास, भौगोलिक विशेषताएं तथा भूगर्भीय क्षेत्रीय भ्रमण

पूर्वोत्तर भारत में अरुणाचल प्रदेश का एक विशिष्ट स्थान है। यह वह धरा है जहाँ अरुण सर्वप्रथम अपनी दस्तक देता है, जो दुर्लभ वनस्पति तथा जीव जंतुओं की जननी है, भारत की विशाल नदियों में से एक ब्रह्मपुत्र नदी जिसको सिंचित करती है तथा यह सभी समुदाय के लोगों को एकता के सूत्र मे पिरोये है। इस लेख मे अरुणाचल प्रदेश के इतिहास, भौगोलिक, भूगर्भीय विशेषताओं तथा हमारे समूह द्वारा किए गए भूगर्भीय क्षेत्रीय भ्रमण का संक्षिप्त परिचय निहित है।

अरुणाचल प्रदेश का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। महाभारत तथा वाल्मीकि रामायण में भी अरुणाचल प्रदेश का उल्लेख मिलता है। यहाँ निवास करने वाले किरात समुदाय के लोगों का वर्णन करते हुए वाल्मीकि जी लिखते हैं "*किराता: तीक्ष्ण चुडा: च हेमाभा: प्रियदर्शिना:*" अर्थात किरात स्वर्ण वर्ण के प्रियदर्शी तथा छात्र (क्षत्रिय) धर्म में निपुण हैं। सर्वप्रथम यजुर्वेद में किरात शब्द का उल्लेख मिलता है, "**सरोभ्यो धैवरम्उ पस्थावराभ्यो गुहाभ्य: किरातं सानुभ्यो जम्बकं पर्वतेभ्य: किम्पूरुषम्**" जिसका अर्थ है- ब्रह्मापुत्र के पूर्व में कंदराओं में निवास करने वाले, पर्वतों के शिखरों से औषधि का खनन करने वाले लोग, किरात समुदाय द्वारा शासित प्रदेश प्राग्ज्योतिष कहलाया तथा कालांतर में कामरूप कहलाया, जिसका वर्णन सतपथ ब्राह्मण तथा महाभारत में उपलब्ध है। रामायण के किष्किंधा कांड में जब रावण सीताजी का हरण कर लेता है, तब सुग्रीव अपनी सेना को चारों दिशाओं में भेजते हैं तथा पूर्व दिशा की ओर जाने वाली सैनिक टुकड़ी से



कहते हैं - समुद्र के मध्य वराह नामक चौसठ योजन का पर्वत है, जिसके उत्तर में नरक राजा द्वारा शासित प्राग्ज्योतिष प्रदेश है, वहां की प्रत्येक कंदरा में सीता माँ को खोजना है। भगवान परशुराम ने अरुणाचल प्रदेश में ही अपने पापों के प्रायश्चित के लिए कठोर तप किया था, जिसका प्रमाण लोहित जिले में परशुराम कुंड के रूप में देखने को मिलता है। मिश्मी समुदाय के लोग श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी को अपना वंशज मानते हैं, जो कुण्डिनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री थीं। अरुणाचल प्रदेश में ज़ीरो घाटी की करडा पहाड़ी पर संसार का सबसे ऊंचा प्राकृतिक शिवलिंग विद्यमान है।

यदि हम इतिहास पर दृष्टि डालें तो कह सकते हैं कि अरुणाचल प्रदेश में प्रारभिंक समय में सनातन धर्म ही विद्यमान था। कालांतर में यहां अन्य धर्मों जैसे बौद्ध तथा ईसाई धर्म का भी विस्तार हुआ वर्तमान समय में अरुणाचल प्रदेश सभी धर्मों के संगम का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है।

भौगोलिक दृष्टि से यह प्रदेश संपन्न है, यहां प्राकृतिक संसाधन जैसे नदियों, झरनों, जंगल, खनिज, दार्शनिक स्थलों की प्रचुर उपलब्धता है। संसार की बड़ी नदियों में से एक ब्रह्मपुत्र इस प्रदेश को सिंचित करती है, जो तिब्बत से उत्पन्न होती है। ब्रह्मपुत्र को अरुणाचल प्रदेश में सियांग नाम से जाना जाता है। सियांग नदी तंत्र गंगा की भांति बहुत विशाल है, परंतु इसका अधिकतम जल बांग्लादेश में प्रवाहित हो जाता है भारत में लाल पांडा अरुणाचल प्रदेश तथा सिक्किम की ऊंची पहाड़ियों पर पाए जाते हैं, जो वन्य जीव फोटोग्राफर्स को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। अरुणाचल प्रदेश में स्थित सेला दर्रा तवांग जिले को शेष अरुणाचल प्रदेश से जोड़ता है। सर्दियों में अत्याधिक हिमपात के कारण यहां से आवागमन दुर्गम हो जाता है। इसलिए अटल सुरंग की भांति यहां भी सेला सुरंग का निर्माण कार्यरत है। जब इस सुरंग का कार्य पूर्ण होगा तब यह भारत की सबसे लंबी सुरंग होगी।

भारत का सबसे बड़ा बौद्ध मठ तवांग जिले में स्थित है। इस मठ का निर्माण पांचवे दलाई लामा की इच्छा अनुसार 1681 से 1680 में लार्डे गयत्सो मेराक लामा ने किया था। इस मठ के निर्माण की पृष्ठभूमि बड़ी रोचक है। चीन तिब्बत की आंखों में हमेशा से खतरा था, क्योंकि तिब्बत पूर्ण रूप से बौद्ध धर्म का पालन करता था वहीं चीन की साम्यवादी विचारधारा थी। यह बात तिब्बत के धर्म गुरुओं को भली भांति पता थी कि चीन मौका पाते ही उन पर आक्रमण करेगा तथा तिब्बत में आर्मी के नाम पर एक डमी आर्मी थी। इसलिए दलाई लामा पंचम बुमला दर्रा (जो तिब्बत को तवांग से जोड़ता है) से तवांग आ गये तथा यहां पर मठ की स्थापना की। यह मठ बौद्ध धर्म के साथ अन्य धर्मों के अनुयायियों को आकर्षित करता है|

गुवाहाटी से तवांग का सड़क मार्ग समस्त भारत के मोटर बाइक सैलानियों को आकर्षित करता है। फिल्म निर्माताओं का भी यह पसंदीदा स्थान है। अरुणाचल प्रदेश में कीवी फल का उत्पादन बहुतायत में होता है।



अरुणाचल प्रदेश ने ही भारत-चीन (1962) युद्ध में सर्वाधिक आघात झेला था। जिसका साक्ष्य जसवंतगढ़ तथा तवांग शहीद स्मारक के रूप में देखने को मिलता है। जसवंतगढ़ शहीद स्मारक (राइफलमैन जसवंत सिंह रावत, गढ़वाल रेजिमेंट) की याद में बनाया गया है। जो उनके अदम्य साहस, कुशल युद्ध रणनीति तथा सर्वोच्च बलिदान की याद दिलाता है। चीन की सेना तवांग पोस्ट पर कब्ज़ा कर बोमडिला की तरफ बढ़ रही थी तब वर्तमान सेला दर्रा के निकट स्थित भारतीय पोस्ट पर जसवंत सिंह रावत ही अंतिम राइफल मैन बचे थे। जसवंत सिंह ने अकेले होने के बावजूद चार दिनों तक चीनी सैनिकों से लोहा लिया। यह युद्ध चार दिनों तक चला, इसमें सेला तथा नूरा ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जसवंत सिंह रावत को मरणोपरान्त "महावीर चक्र" से सम्मानित किया गया तथा उनकी याद में जसवंतगढ़ शहीद स्मारक बनाया गया। इस शहीद स्मारक के पास ही स्थित दर्रे का नाम सेला रखा गया। सेला दर्रे के उत्तरी ढलान से एक नदी निकलती है, जो तवांग जिले में 100 मीटर ऊंजाई का झरना बनाती है। इस झरने को पहले जांग गांव के नाम से जाना जाता था। नूरा के सम्मान में इस नदी तथा झरने का नाम नूरानांग रखा गया।

भू-गर्भीय दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश, विवर्तनिकी गतिविधि के कारण हुई टूट फूट, टकराव तथा उत्थान् के फलस्वरूप एक कठिन भू-गर्भीय परिद्रश्य दर्शाति है। अरुणाचल प्रदेश में प्राग्यजीव काल (प्रोटेरोज़ोइक् एरा) के तथा पर्मियन-कार्बोनीफेरस से क्वाटर्नरी अवधि (पीरियड) तक के अवसाद विद्यमान हैं। अध्ययन के लिए हमने अरुणाचल प्रदेश के उन स्थानों का भ्रमण किया जहां पर पर्मियन काल के अवसाद पाए जाते हैं। अरुणाचल प्रदेश में पर्मियन काल के अवसाद मिरी, बिचोम, गारु, भरेली तथा अबोर वॉल्केनिक्स के नाम से विद्यमान हैं।

बिचोम शैलसमूह हिम अवसाद, काला शेल पत्थर तथा कुछ क्वारजाइट अवसादों से मिलकर बना हुआ है। गारू शैलसमूह कार्बन से युक्त शेल पत्थर, कोयला तथा बालूआ पत्थर से मिलकर बना है। भरेली शैल समूह मोटे फेल्सपार युक्त बालुआ पत्थर तथा शेल के साथ कुछ कोयले की परतों से मिलकर बना है। इनमें से बिचोम, गारु एवं भरेली शैलसमूह में जीवाश्म (बृहद एवं सूक्ष्म दोनों प्रकार के) पाए जाते हैं। भरेली शैलसमूह में ग्लोसोप्टेरिडेल्स पादप समूह के जीवाश्म भली भांति संरक्षित पाए जाते हैं जो भारत वर्ष के अधिकांशतः (पर्मियन काल के) कोयला निर्माण के लिए उत्तरदायी हैं। हालांकि भरेली शैलसमूह का कोयला निम्न गुणवत्ता का है तथा खनन योग्य नहीं है। बिचोम और गारु शैलसमूह में पादप जीवाश्मों के साथ-साथ समुद्री जंतुओं के जीवाश्म भी पाए जाते हैं जो पर्मियन काल में इन शैलसमूहों के निक्षेपण के समय समुद्री परिस्थियों की उपस्थिति को दर्शाते हैं।



(क) अरुणाचल प्रदेश का राजकीय पशु (मिथुन)



(ख) जसवंतगढ़ शहीद स्मारक



(ग) सेला दर्रा पर स्थित पैराडाइस झील



(घ) समूह छायाचित्र



(ड.) दीरंग घाटी का नयनाभिराम दृश्य



(च) नूरा झरना



(छ) भारत का सबसे बड़ा बौद्ध मठ



(ज) कृषि योग्य मृदा पर कीवी की खेती



समसामयिक लेख

तकनीकी युग में आधारभूत विज्ञान विषयों का घटता महत्व

विकास आज का एक बड़ा मुद्दा है और तकनीकी एवं विज्ञान इसके सबसे महत्वपूर्ण संघटन हैं। विकास चाहे देश का हो या व्यक्ति का, यह अनेक तरीकों से तकनीकी/तकनीकों की उचित वृद्धि और उनके विकास से जुड़ा हुआ है। हम सभी का जीवन वैज्ञानिक आविष्कारों और आधुनिक समय की तकनीकों पर बहुत अधिक निर्भर करता है, और यह मानव जीवन के अस्तित्व और प्रगति के लिए जरूरी भी है। इस बात को नकारा भी नहीं जा सकता कि नवीन आविष्कारों ने हमें बहुत लाभ पहुँचाया है और यह तकनीक ही है जिसने मानव जीवन को अत्यंत सहज, सरल और रोचक बना दिया है। परंतु हर आविष्कार का उत्पादक व जड़ आधारभूत विज्ञान से ही संभव है। यह सिंधु घाटी सभ्यता से ही हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। "आग" और "पहिए" की खोज करने के लिए पाँच आविष्कार किए गए थे। दोनों के ही आविष्कारों को वर्तमान समय के तकनीकी आविष्कारों का जनक कहा जाता है। आज के युग में आधारभूत विषयों का घटता महत्व एक चिंता का विषय है। लोग प्रयुक्त-विज्ञान में ज्यादा रूचि दिखा रहे हैं। किसी भी विषय-वस्तु का अवलोकन उसकी नींव से बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। प्रयुक्त विषय सिर्फ संक्षिप्त में उसका अर्थ आसान तरीके से समझा सकते हैं।

जहाँ एक ओर तकनीकी का अर्थ ज्ञान व कौशल के संयोजन से है, वहीं दूसरी ओर तकनीकी की दिशा की ओर हो इस पर विवाद लगातार सामने आ रहे है।

- वित्तीय वर्ष 2022-23 में विज्ञान और तकनीकी को रू.14,217 करोड़ का वितरण निश्चित किया जो कि पिछले वर्ष से 3.9% कम है। विज्ञान और तकनीकी अनुसंधान के लिए भारत ने सकत घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) का सिर्फ 0.3% ही दिया है जो कि विज्ञान के प्रति घटती रूचि को दर्शाता है। ठीक इसी तरह अनुसंधान एवं विकास के लिए जी.डी.पी. का 0.7% आवंटित किया। जो कि चीन और जापान से अत्यधिक कम है।
- इसी बीच जाने-माने कृषि वैज्ञानिक एम.एस. स्वामि-नाथन द्वारा GM-Crop को एक असफल प्रयोग कहे जाने के कारण इस विमर्श पर चर्चा का बाज़ार और गर्म हो गया है।

कृषि को हमारी अर्थव्यवस्था की धुरी और किसान को देश का अन्नदाता कहा जाता है। लेकिन किसानों द्वारा आत्महत्या करना भी एक बड़ा सच है। उत्पादन में



इजाफ़ा करने का दावा करने वाली GM-Crop, अपने दावों से इतर साबित हो रही है और GM-Crop, बीज मुहैया कराने वाली कंपनियों का मुनाफा कई गुना बढ़ गया है। तकनीकी के इस युग में मशीन से बने हुए उपंतरित बीज का चलन बढ़ रहा है, जो कि मानव शरीर के लिए हानिकारक है तथा भोजन के मूल प्राकृतिक लाभ को भी खत्म कर रहा है। ऐसी तकनीकें न केवल जानवरों को नुकसान पहुँचा रही है, अपितु किसानों के लिए प्रतिस्पर्धा और चुनौती भरी स्थिति पैदा कर रही है।

आज से कुछ समय पूर्व जीवन कठिन जरूर था पर साधारण और प्राकृतिक मूल्यों से भरपूर था लोगों में मानवता थी, मनुष्यों में रोग व्यधि से लडने की क्षमता थी और लोग मानसिक, शारीरिक व नैतिक रूप से स्वस्थ हुआ करते थे। परंतु तकनीक का सहारा मिलते ही लोगों के जीवन में तनाव और चुनौतियाँ और बढ़ गई हैं। इससे इंकार नहीं किया जा सकता है कि किसी भी तकनीक के साथ उसके सही व गलत पक्ष जुडे होते हैं और उसका आधार ही उसके विकास का कारण है। भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक कर्तव्यों में इसकी चर्चा की गई है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावन का विकास करे तथा विज्ञान के नैतिक मूल्य व आधारभूत विषयों को समझ कर ही तकनीकी का प्रयोग व उसकी आवश्यकता को संबोधित करे।

आर्या पाण्डेय

पर्यावरण: जीवन का आधार

सभी प्रकार के प्राकृतिक तत्व जो जीवन को संभव बनाते हैं वह पर्यावरण के अन्तर्गत आते हैं जैसे- पानी, हवा, भूमि, प्रकाश, आग, जंगल, जानवर, पेड़ इत्यादि। पृथ्वी ही एक ऐसा ग्रह है जिस पर जीवन है तथा जीवन के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए पर्यावरण है। पर्यावरण के अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती तथा हमें भविष्य में जीवन को बचाये रखने के लिए पर्यावरण की सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए। पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की ज़िम्मेदारी है कि हर व्यक्ति आगे आये और पर्यावरण संरक्षण की इस मुहिम का हिस्सा बने। इसकी जागरुकता हेतु प्रत्येक वर्ष 05 जून विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाता है।

पृथ्वी पर विभिन्न चक्र है जो नियमित तौर पर पर्यावरण और जीवित चीजों के मध्य घटित होकर प्रकृति का संतुलन बनाये रखते हैं। जैसे ही यह चक्र विक्षुब्ध होता है, पर्यावरण संतुलन भी उससे विक्षुब्ध होता है। जो निश्चित रूप से मानव जीवन को प्रभावित करता है। मनुष्य को प्रकृति द्वारा बनाया गया पृथ्वी का सबसे बुद्धिमान प्राणी

माना जाता है, क्योंकि उनमें ब्रह्मांड के तथ्यों को जानने की बहुत उत्सुकता होती है, जो कि उन्हें तकनीकी उन्नति की ओर अग्रसरित करता है।

औद्योगिक कम्पनीयों से निकलने वाला हानिकारक धुआं हमारी प्राकृतिक हवा को दूषित करता है। वायु और जल के दुषित होने से विभिन्न प्रकार के रोग तथा विकार का जन्म होता है। जिससे हमारा स्वास्थ्य प्रभावित होता है, क्योंकि हमेशा हम सांस के माध्यम से इसे ग्रहण करते हैं, जो हमारे जीवन को खतरे में डालते हैं, दिन-प्रतिदिन जीवन की संभावनाओं को खतरे में डाल रही हैं तथा पर्यावरण को नष्ट कर रही है। जिस तरह से प्राकृतिक हवा, पानी और मिट्टी दूषित हो रही हैं, ऐसा प्रतीत होता है जैसे यह एक दिन हमें बहुत हानि पहुंचा सकती है। यहाँ तक कि इसने अपना बुरा प्रभाव मनुष्य, जानवर, पेड़ एवं अन्य जैविक प्राणी पर दिखाना शुरू भी कर दिया है। कृत्रिम रूप से तैयार खाद तथा हानिकारक रसायनों का उपयोग मिट्टी की उर्वरकता को नष्ट करता है।



बढ़ता प्रदूषण : “कल” को बचाने के लिए “आज” सतर्क होना बहुत जरूरी

धरती पर रहने वाले सभी व्यक्तियों द्वारा उठाए गए छोटे कदमों के माध्यम से हम बहुत ही आसान तरीके से पर्यावरण को सुरक्षित रख सकते हैं। हमें अपशिष्ट की मात्रा में कमी करनी चाहिए तथा अपशिष्ट पदार्थ को वही फेकना चाहिए जहां उसका स्थान है। प्लास्टिक बैंग का उपयोग नही करना चाहिए तथा कुछ पुरानी चीजों को फेंकने के बजाय नए तरीके से उनका उपयोग करना चाहिए। हम सभी को अपनी गलती में सुधार करना होगा तथा स्वार्थता त्याग कर पर्यावरण को प्रदूषण से सुरक्षित एवं स्वस्थ करना होगा। हमें समय-समय पर अपने घर एवं कार्यस्थल पर वृक्षारोपण कार्यक्रम का भी आयोजन करना चाहिए। यह मानना कठिन है, परंतु सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उठाया गया छोटा सकारात्मक कदम बड़ा बदलाव कर सकता है जो पर्यावरण गिरावट को रोक सकता है।



हमें इस बात का खयाल रखना चाहिए कि आधुनिक तकनीक, पारिस्थितिकीय संतुलन को भविष्य में कभी विक्षुब्ध न करें, समय आ चुका है कि हम प्राकृतिक संसाधनों का अपव्यय बंद करें और उनका विवेकपूर्ण तरह से उपयोग करें। हमें हमारे जीवन को बेहतर बनाने के लिए विज्ञान तथा तकनीक को विकसित करना चाहिए पर हमेशा इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि यह आधुनिक विकास भविष्य में पर्यावरण को किसी भी प्रकार से नुकसान न पहुचाएं।

अक्षय कुमार

हिमालय के क्वार्टनरी निक्षेपों के भू-विरासत स्थल: बचाव हेतु अपेक्षित पहल

उत्तर पश्चिम हिमालय में अपने शोध कार्य के पिछले 20 वर्षों में, मैंने देखा है कि क्वार्टनरी निक्षेपों (सरोवर एवं वातोढ) का दोहन किया जा रहा है और कई खतरों का सामना कर रहे हैं। इनमें से कुछ स्थल हाल ही की अवधि के भू-आकृति विज्ञान, परिदृश्य विकास, पुराजलवायु, पुरापारिस्थितिकी और नवविवर्तनिकी पर जानकारी का खजाना हैं। तीसरे ध्रुव के इस महत्वपूर्ण हिस्से, जो कि भारत के खूबसूरत हिमालयी राज्यों में हर साल दस लाख से अधिक पर्यटकों को आकर्षित करता है, के जलवायु परिवर्तन, जलीय जलवायु, पारिस्थितिकी, पर्वतीय भू-आकृतिविज्ञान आदि को समझने में बहुत मददगार साबित हो सकते हैं। प्राकृतिक खतरों के अलावा, क्वार्टनरी शोधकर्ताओं के लिए सूचना के इन मूल्यवान स्रोतों (पैलियोलेक निक्षेप, गुफाओं, पेट्रोग्लिफ्स/रॉक आर्ट; सैंड रैंप आदि) का हाल ही के दशक में मानवजनित गतिविधियों द्वारा नष्ट किया जाना प्रमाणित हुआ है। पहला और सबसे बड़ा खतरा, पश्चिमी विक्षोभ और भारतीय ग्रीष्मकालीन मानसून, दोनों से प्रभावित युवा पर्वत श्रृंखला में इन अवसादों का स्थान है, जिससे ये स्थल भौतिक अपक्षय के साथ-साथ कटाव के लिए भी अतिसंवेदनशील हो जाते हैं। इस क्षेत्र में अन्य



प्रमुख चिंता का विषय नव विवर्तनिक गतिविधियां हैं, क्योंकि हिमालय की सम्पूर्ण पर्वतीय पट्टी (सबसे युवा वलित पर्वतीय पट्टी) अभी-भी विवर्तनिक रूप से सक्रिय है। जलवायु परिवर्तन और नवविवर्तनिक गतिविधियों के संयुक्त प्रभाव के परिणामस्वरूप भूकंपीय झटके, भूकंप, भूस्खलन, जीएलओएफ (एस) और बादल फटने जैसे प्राकृतिक खतरे इन निक्षेपों को हानि के लिए अतिसंवेदनशील बनाते हैं। हिमालय के इन क्षेत्रों में कटाव के कारण हर साल बड़ी मात्रा में अवसाद नष्ट हो रहे हैं।

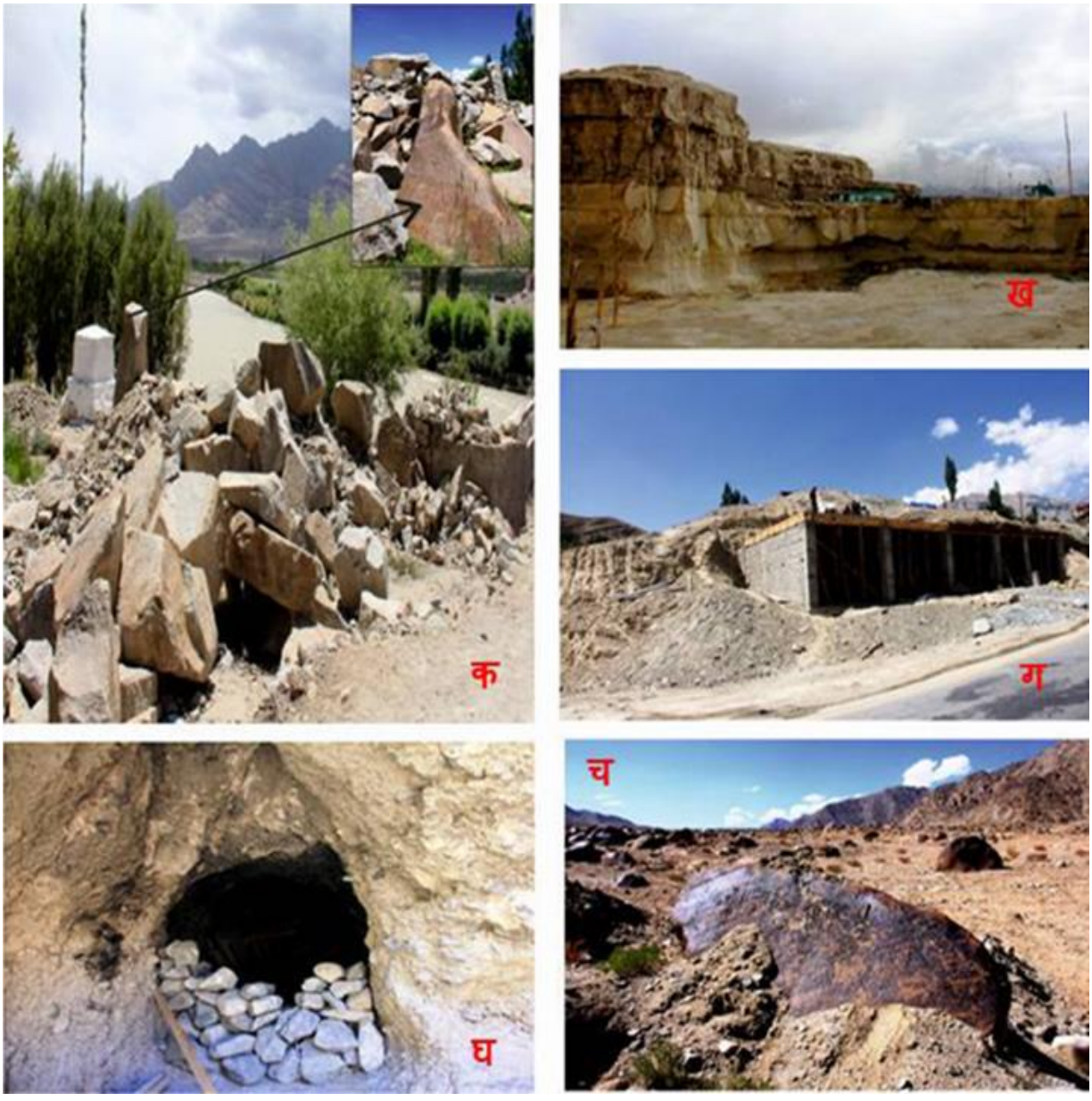
इन प्राकृतिक आपदाओं के अतिरिक्त, जिन्हें रोकना हमारे हाथ में नहीं है, दशकों से आधारभूत विकास के अंतहीन खेल हेतु मानवजनित अनुचित हस्तक्षेप का लगातार खतरा बना हुआ है। औद्योगिक क्रांति के बाद से, नए तकनीकी आविष्कारों से सामाजिक विकास, जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण में विस्तार हुआ जो कि पर्यावरण के क्षरण का कारण बना। अस्थायी जनसंख्या को समाहित करने के लिए, इन स्थलों पर निर्माण गतिविधियां संचालित हो रही हैं एवं आलेखों में मौजूद रहस्यों का क्षरण किया जा रहा है। कटाव, खनन, कृषि, शहरीकरण और उद्योगों से उन्हें भारी नुकसान हो रहा है।

इनमें से कुछ भू-स्थलों में भू-पर्यटन की काफी संभावनाएं हैं जो स्थानीय आबादी की सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बढ़ाने में मददगार साबित हो सकती हैं। स्थानीय लोगों के साथ-साथ पर्यटकों की जरूरतों को पूरा करने के लिए इन क्वार्टनरी अवसादी निक्षेपों पर बहुत दबाव डाला जाता है जो कच्चा माल उपलब्ध कराने हेतु खनन के लिए आसान लक्ष्य हैं। कुछ ही समय में, इनमें से कई स्थलों को आधुनिक समय के निर्माणों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया जाएगा और इसलिए इसके आवश्यक संरक्षण और एक स्थायी तरीके से भू-संसाधनों के उपयोग के महत्व को समझने की आवश्यकता है। हालांकि इन सभी भू-स्थलों को संरक्षित नहीं किया जा सकता है, लेकिन तुलनात्मक रूप से अधिक वैज्ञानिक महत्व वाले कुछ स्थलों को वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान और आने वाली पीढ़ियों के लिए बनाए रखने और संरक्षित करने की आवश्यकता है। दुनिया भर में, भू-विरासत स्थलों को भविष्य की पीढ़ियों के लिए अभिलेखागार के रूप में संरक्षित किया जा रहा है, और भारतीय स्थलों, विशेष रूप से क्वार्टनरी निक्षेपों का उल्लेख एवं एक संरक्षण नीति की आवश्यकता है। विश्व के अलग-अलग देशों में प्राकृतिक और भू-वैज्ञानिक संसाधनों के संरक्षण के लिए अलग-अलग कानून, सामाजिक परिस्थितियां और ऐतिहासिक संबंध हैं, जिसके कारण ग्रह की भू-गर्भीय विरासत अच्छी तरह से संरक्षित और परिरक्षित नहीं है।

हमारा कर्तव्य है कि हम अपने कार्य क्षेत्र में इन स्थलों की सूची बनाएं और उस क्षेत्र के स्थानीय और प्रशासनिक अधिकारियों से उनके महत्व और उनके संरक्षण के विषय में बात करें। कम से कम हम यह कर सकते हैं कि इन भू विरासत स्थलों को भू-पर्यटन स्थलों के रूप में नामित किया जाए जिससे स्थानीय युवाओं को पर्याप्त रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे जो, आर्थिक स्थिति को बढाएगा। अंततः समाज में अज्ञानता और

खनन की वर्तमान दर यदि जारी रही, तो आने वाले कुछ वर्षों में हिमालय क्षेत्र के सभी भू-स्थल नष्ट हो जाएंगे। आइए, हम अपने क्वार्टनरी भू-स्थलों की रक्षा का संकल्प लें।

बिनीता फर्त्याल



क. स्टकना में अनावरित गोलाश्म सहित शैल-चित्र, ख. स्पीतीय-लेह पुराझील, ग. पशक्युम पुराझील, घ. भंडारण हेतु प्रयुक्त गुफा, च. गोलाश्म सहित शैल-चित्र का विहंगावलोकन



आनुवंशिक एवं पर्यावरण तनाव के बीच जीव-रूपों की दृढ़ता: एक समीक्षा

ऐसा कहा जाता है कि प्रकृति की महानता उसके छोटे-से-छोटे विवरण में सबसे स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। इन छोटे विवरणों में विकास के रहस्य छिपे हुए हैं। जैविक विज्ञान में, तनाव शब्द का प्रयोग उन स्थितियों के लिए किया जाता है जहाँ जीव-रूपों की उपयुक्तता कम हो जाती है। अधिकतर, तनाव की स्थितियां पर्यावरण परिस्थितियों में बदलाव के कारण होती हैं। इनमें, भौतिक विशेषताओं, जलवायु कारकों एवं जैविक घटकों में परिवर्तन शामिल हैं। जलवायु परिस्थितियाँ, जीवों और उनके पारितंत्र पर एक सशक्त दबाव डालती हैं। पृथ्वी पर जीवन की उत्पत्ति (3.5 अरब साल) से लेकर आजतक, यह निरंतर जीव-रूपों के लिए नई चुनौतियां पेश कर रहा है (नोल ए.एच. और लिप्स जे.एच. 1993. इवोल्यूशनरी हिस्ट्री ऑफ प्रोकैरियोट्स ऐंड प्रोटिस्ट्स. फॉसिल्स प्रोकैरियोट्स ऐंड प्रोटिस्ट्स (जे.एच. लिप्स ed.) में. ब्लैकवेल साइंटिफिक, बोस्टन्. 19-29)। जीव-प्रजातियाँ और उनकी आबादी, अनुकूल विकास द्वारा जलवायु परिवर्तन का जवाब दे सकती हैं अथवा भौगोलिक रूप से उपयुक्त जलवायु वाले स्थानों पर भी पलायन कर सकती हैं। यदि वे इनमें से किसी एक को भी करने में विफल होती हैं, तो उन्हें विलुप्त होने का सामना करना पड़ता है (पियर्सन आर.जी. 2006. क्लाइमेट चेंज ऐंड दी माइग्रेशन कैपासिटि ऑफ स्पीशीज़. ट्रेन्डस इन इकोलोजि ऐंड ईवोल्यूशन :111-113)। हालांकि, इस कथन का कोई प्रमाण नहीं है कि जीवन कभी भी पूरी तरह से विलुप्त हो गया हो और परंपरागत रूप से 40 लाख प्रजातियाँ आज भी इस पृथ्वी पर जीवित हैं। जलवायु परिवर्तन ने पृथ्वी पर मौजूद विविधता के वर्गीकरण और पारिस्थितिक स्वरूपों में एक अभिलेख छोड़ा है (पार्मेसान सि. और योहे जी. 2003. ए ग्लोबली कोहेरेन्ट फिंगरप्रिंट ऑफ क्लाइमेट चेंज इम्पैक्टस ऐक्रॉस नैचुरल सिस्टम्स. नेचर. 421:37-42)।

तनाव आंतरिक भी हो सकता है तथा समरूपता में वृद्धि आनुवंशिक तनाव का कारण बनती है। संरक्षण जीवविज्ञान में आनुवंशिक तनाव का अध्ययन एक महत्वपूर्ण तत्व है। समरूपता के कारण, जनसंख्या में गिरने वाली प्रजातियाँ, अनियमित (स्टोकेस्टिक) उतार-चढ़ाव से अत्यधिक प्रभावित होती हैं। इन स्टोकेस्टिक प्रक्रियाओं को चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है (शेफर एम.ऐल 1987. मिनिमम वाइऐबल पॉपुलेशन्स: कोपिंग विध अनसरटेनिति वायाबल पॉपुलेशन्स फॉर कन्सरवेषन (एम.इ सिसर्टन योले ed.) में. केम्ब्रिज यूनिवर्सटि प्रेस, केम्ब्रिज. 69-86)। जन-सांख्यिकीय स्टोकेस्टिक प्रक्रिया, अस्तित्व और प्रजनन में भिन्नता का कारण बनती है। पर्यावरण स्टोकेस्टिक प्रक्रिया, पोषक तत्वों की आपूर्ति, मौसम, बीमारियों और परभक्षियों जैसे भौतिक और जैविक घटकों में उतार-चढ़ाव का कारण बनती है। प्रलयंकर स्टोकेस्टिक



प्रक्रिया, प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, भूकंप, सूखा, आग आदि के कारण अल्प जनसंख्या वाली प्रजातियों के विलुप्त होने का कारण बनती है। आनुवंशिक स्टोकेस्टिक प्रक्रिया, आनुवंशिक संरचना में परिवर्तन एवं उत्तरजीविता और प्रजनन में परिवर्तन का कारण बनती है। जनसंख्या में गिरने वाली प्रजातियों में, पर्यावरण समस्याओं को तुलनात्मक रूप से अधिक मान्यता दी जा सकती है। कभी-कभी आनुवंशिक समस्याओं के स्पष्ट होने से पूर्व ही प्रजातियाँ विलुप्त हो जाती है (मेंजेस इ.एस. 1991. दि ऐप्लिकेशन ऑफ मिनिमम वाइऐबल पॉपुलेशन टू प्लांट्स. जेनेटिक्स ऐंड कन्सरवेशन ऑफ रेयर प्लांट्स (डी.ए. फॉक ऐंड के. होलसिंगर eds.) में. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सटि प्रेस, न्यू योर्क. 45-61)। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो, आनुवंशिक तनाव और पर्यावरण तनाव आवश्यक रूप से स्वतंत्र नहीं हैं और यह मान लेना शायद अधिक यथार्थवादी होगा कि वे सहक्रियात्मक हो सकते हैं (पार्सन्स आर.ए. 1992. फ्लक्चुयेटिंग ऐसिमेट्रि: ए बॉयलजिकल मोनिटर ऑफ इन्वाइरॉमेंटल ऐंड जीनोमिक स्ट्रेस. हेरिडिटि. 68:361-364)।

शुभांकर प्रमाणिक



शोध लेख

भारतीय एम्बर में जीवाश्मों का संरक्षण

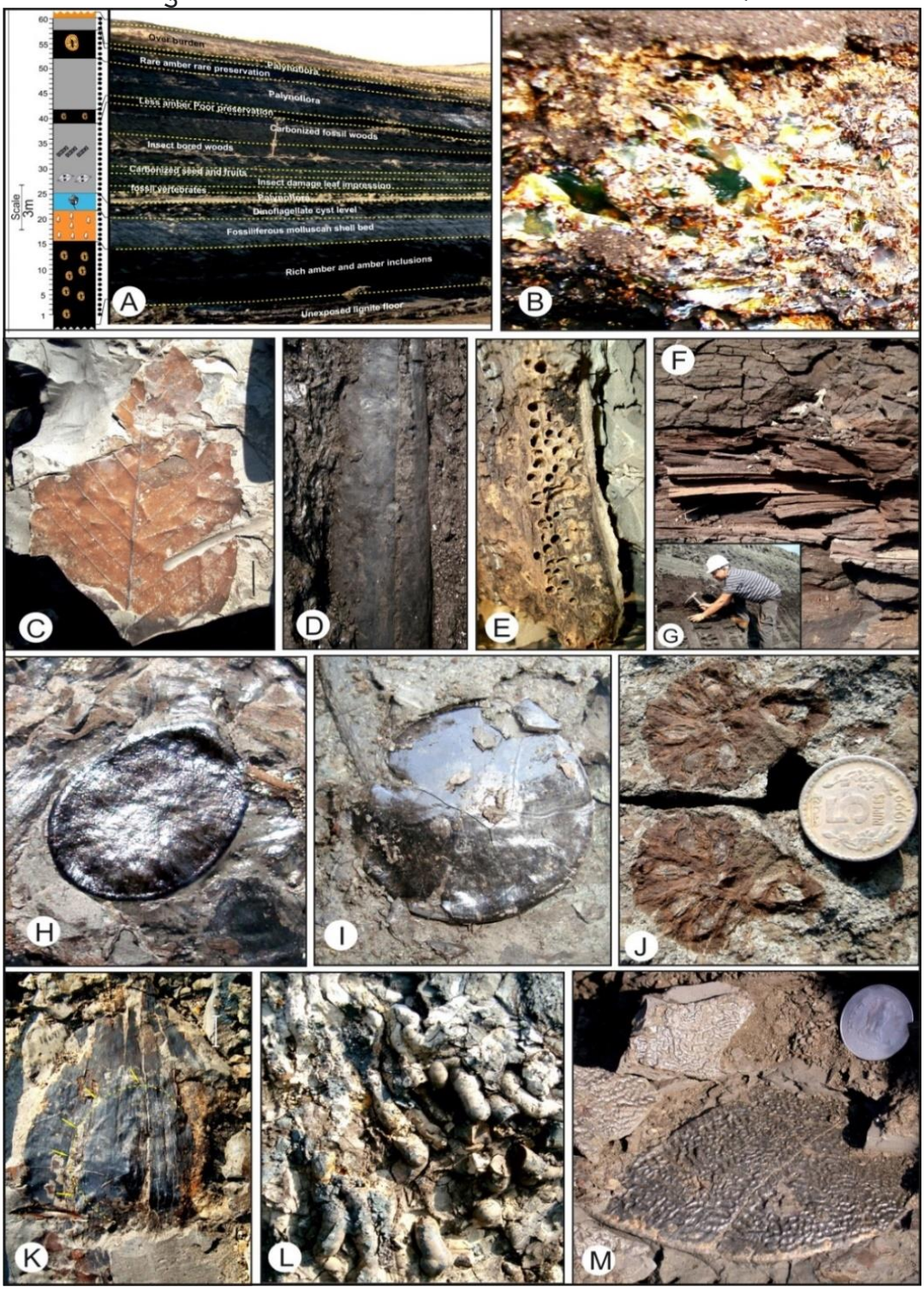
भू-विज्ञान को समझने में जीवाश्मविज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान है। जीवाश्मिकी अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों में, एम्बर विज्ञान भारत-एशिया संघट्ट के दौरान जीवन रूपों के अंतिम वितरण को समझने में नवीन और महत्वपूर्ण है। यह अवधि, जिसमें तापमान और जैविक विविधता में अचानक वृद्धि हुई, पेलियोसीन-इयोसीन अवस्थापरिवर्तन कहलाती है।

एम्बर एक पॉलिमराइज्ड राल (गोंद) है जो उष्णकटिबंधीय-उपोष्णकटिबंधीय पौधों के कुलो की एक श्रृंखला से स्रावित है व निक्षेपों में संरक्षित है, तथा प्राचीन डेल्टा प्रणाली के निचले हिस्से में पाया जाता है। जीवाश्मीकरण के दौरान, पौधों से निकलने वाली राल (गोंद) सभी जीव-जंतु (बायोटा) को अपने अंदर समाहित करती है। भारतीय-एशिया विवर्तनिक आधार पट्टिका के संघट्ट के बाद नियोटेथिस पैलियोकरंट्स में व्यवधान के कारण बनी लिग्नाइट (भूरा-कोयला) खदानों से एम्बर गोंद मिले हैं। पिछले कुछ वर्षों में वर्गीकृत और अध्ययन किए गए कई एम्बर बायोटा (जीव-जंतु) में से, भारतीय एम्बर ने जीवाश्म विज्ञानियों, भू-विज्ञानियों और कीट विज्ञानियों को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आकर्षित किया है।

गुजरात में बहुत सारे एम्बर स्रोत कैंबे (खंभात) और कच्छ द्रोणी लिग्नाइट (भूरा-कोयला) क्षेत्र में है। गुजरात से हालिया प्रकाशनों ने पिछले दो दशक में अद्वितीय आर्थ्रोपोड जीवाश्मों से लेकर दिलचस्प फूलों और मीठे पानी के क्रस्ट्रेशियन तक उत्कृष्ट एम्बर निष्कर्षों को प्रकाशित किया है। गुजरात में खुली लिग्नाइट खदानों से 54 से 40 मिलियन वर्ष पुराने एम्बर में संरक्षित जीवाश्म आर्थ्रोपोड की जानकारी मिली है। कीड़े, अरचिन्ड और मीठे पानी के ऑस्ट्राकोड, आर्थ्रोपोड भी इस बायोटा में शामिल हैं। पारंपरिक इमेजिंग, जैसे 3-डी सिंक्रोट्रॉन एक्स-रे टोमोग्राफी, कन्फोकल लेजर और इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी द्वारा पैलियोएंटोमोलॉजी की दिशा ने एक ऐतिहासिक प्रगति दर्ज की है। आर्थ्रोपोड संयोजन यूरोप, एशिया और गोंडवाना से समानता के साथ भारत के अंतर्गामी और बहिर्गामी विस्तार का संकेतक है। भूमध्य रेखा पर एपिसोडिक थर्मल हीटिंग के दौरान भारत एक पृथक् उपमहाद्वीप था। इयोसीन में व्यापक जैविक विकिरण हुआ, जिसका कई वंशावली अभी भी जीवित हैं। भारतीय एम्बर की रासायनिक संरचना भी महत्वपूर्ण है। अब तक पाया गया पहला डैमर-II रेज़िन डिप्टरोकार्पेसी (एंजियोस्पर्म) वृक्षों का है।

एम्बर में जीवों के जीवाश्म का उत्कृष्ट तीन-आयामी संरक्षण विविध जैविक विविधता के पुरा-इतिहास और पारिस्थितिकी तंत्र में उनके अंतर-विशिष्ट संघों का अध्ययन करने का अवसर प्रदान करता है जो भारत-एशिया विवर्तनिक आधार पट्टिका के

संघट्ट के इतिहास में महत्वपूर्ण उष्ण (तापन) अवधि के दौरान मौजूद थे। यह पौधों और जंतुओं के पिछले वितरण को दर्शाता है, जो उष्णकटिबंधीय एम्बर वनों के पुराभौगोलिक पुर्नसंरचना में सहायक है। बायोटा (जीव-जंतु) के विकासवादी अध्ययन हेतु भी एम्बर अध्ययन उपयोगी संसाधन रहे हैं, तथा आज मौजूद उनके आधुनिक समकक्ष रूपों के साथ जीवाश्म रूपों का तुलनात्मक विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करता है।



चित्र 1. कैंबे क्षेत्रीय भ्रमण के दौरान एम्बर जीवाश्म का एकत्रण

ये भारत के पेलियोसीन निधि को बढ़ाने और भूवैज्ञानिक अध्ययन के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को विस्तार देने के लिए एम्बर खोजें नए आयाम प्रदान करेंगी, जो पहले ज्ञात नहीं थे व जिनकी वैज्ञानिक पटलों पर शायद ही कभी चर्चा की गई थी।



चित्र 2. कच्छ के क्षेत्रीय भ्रमण के दौरान नमूने एकत्रित करते हुए

भारत में ऐसा अध्ययन करने वाला एक मात्र संस्थान बीएसआईपी लखनऊ है, जिसने जीवाश्म विज्ञान में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बीएसआईपी का एम्बर विभाग



लगातार एम्बर में नए जीवाश्म खोजता रहा है, जो जैविक वंशावली के शोध और जीवाश्मों के अंतरराष्ट्रीय व्याप्ति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालेगा। बीएसआईपी लखनऊ की एम्बर टीम नई खोजों में प्रयासरत है तथा भारतीय अनुसंधान में मानक निर्धारित करने का प्रयास कर रही है।

हुकम सिंह

मध्य गंगा के मैदान में पुरा-पर्यावरणीय परिवर्तनों को समझने हेतु बहु-प्रॉक्सी आधुनिक एनालॉग की स्थापना

मध्य गंगा के मैदानी इलाकों यानी गंगा-घाघरा और घाघरा-गंडक के दो अंतर्प्रवाहों में मौजूद झीलों, नदियों, वनों, और अनाजभूमी जैसे विभिन्न निक्षेपण मिट्टी के नमूनों से जैविक और अजैविक प्रॉक्सी अभिलेखों पर आधारित एक एनालॉग डेटासेट तैयार किया गया है जो पुरा-पारिस्थितिक अध्ययन के लिए एक सटीक संदर्भ (ऐनालॉग) होगा। मध्य गंगा का मैदान अपनी उपजाऊ मिट्टी, पानी की उपलब्धता, चिकनी परिदृश्य और उपयुक्त जलवायु के कारण घनी आबादी वाले भारत के लिए एक खाद्य टोकरी के रूप में कार्य करता है, लेकिन हाल के दशकों में जलवायु (मॉनसून) परिवर्तनशीलता के मामले में महत्वपूर्ण उथल-पुथल से गुजर रहा है। भविष्य के परिदृश्य के आकलन के लिए सटीक जलवायु मॉडल की आवश्यकता होती है, जिसे पुराजलवायु-पुनर्निर्माण आंकड़ों का उपयोग करके स्थापित किया जाता है । इस शोध कार्य में उत्तर प्रदेश के गोरखपुर, संत कबीर नगर, बलिया, मऊ और प्रतापगढ़ जिलो से एकत्रित मिट्टी के नमूने शामिल हैं। इनमें पुरातात्विक स्थल के लिए प्रसिद्ध लहुरादेवा झील भी शामिल है।

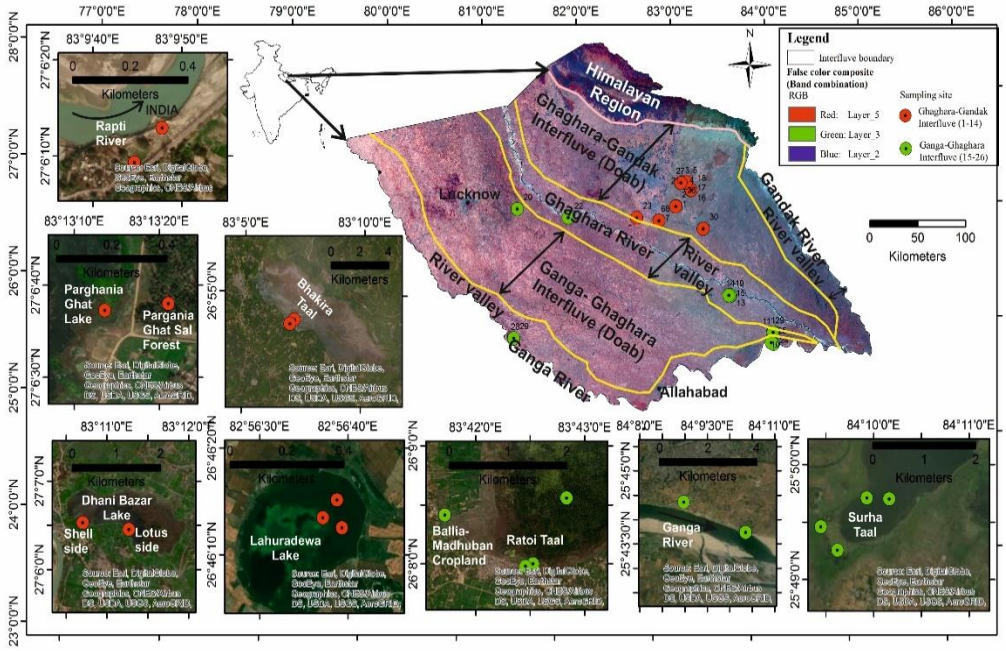
हिंद महासागर में बढ़े हुए समुद्र-सतह तापमान (एसएसटी) के कारण उप-महाद्वीपीय भूभाग और उत्तरी हिंद महासागर के बीच भूमि-समुद्र तापीय विपरीतता अचानक बढ़ गई है, जिससे मध्य गंगा के मैदान में शुष्कता में वृद्धि हो सकती है। इस प्रकार, वर्षा वितरण में हाल की गिरावट का नकारात्मक प्रभाव मध्य गंगा के मैदानी इलाकों के जल संसाधनों और फसल उत्पादकता पर पड़ सकता है। इसके अलावा, पिछली सदी में जारी ग्लोबल वार्मिंग और शहरीकरण ने भी समवर्ती जलवायु परिवर्तन परिदृश्य के तहत तेजी से चरम परिवर्तन किए हैं। तलछटी अभिलेखागार से प्राप्त प्रॉक्सी-आधारित मात्रात्मक पुरा-पर्यावरणीय पुनर्निर्माण बहुत उपयोगी हैं क्योंकि वे पुरा-पर्यावरण (जलवायु-वनस्पति संपर्क, निक्षेपण सेटिंग आदि) के प्राथमिक चालकों और मानव निवास पर उनके प्रभाव पर अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं।

यह आधुनिक ऐनालॉग डेटासेट मध्य गंगा के मैदानी इलाकों के वनों, फसलों, झीलों और नदियों में पनपने वाली लुप्तप्राय जैव विविधता के संरक्षण एवं मध्य गंगा के मैदान के पुरा-पारिस्थितिक पुनर्निर्माण के लिए पृष्ठभूमि की जानकारी प्रदान कर सकता

है। मिट्टी के नमूनों में गैर-पराग पैलिनोमॉर्फ्स (एनपीपी) विशेष रूप से कवक बीजाणुओं और बायोडिग्रेडेड पराग की मौजूदगी के साथ-साथ मानवजनित संकेतक डायटम जैसे *गोम्फोनेमा* और *उल्नारिया उल्ना* मध्य गंगा की झीलों और नदियों के निरंतर बिगड़ने का संकेत देते हैं। यहाँ की झीलें जो कभी पानी से भरी हुई थीं और मानव जनजाति का समर्थन करती थीं, वर्तमान में सूख रही हैं और उन्हें संरक्षित और साफ करने की आवश्यकता है ताकि झीलों में और उसके आसपास समृद्ध जैव विविधता का उपयोग सतत भविष्य के विकास के लिए किया जा सके।

इस प्रकार, इस मल्टीपैरामीटर अध्ययन को विभिन्न झीलों और नदी प्रणालियों (कुछ को रामसर कन्वेंशन के तहत सूचीबद्ध किया गया है) के संरक्षण के लिए एक महत्वपूर्ण आधार रेखा के रूप में भी देखा जा सकता है।

मध्य गंगा के मैदानी इलाकों में झीलों के नुकसान और गिरावट के मुख्य कारणों में भूमि उपयोग में बड़े बदलाव शामिल हैं, विशेष रूप से कृषि, चराई और शहरी बुनियादी ढांचे के विकास में वृद्धि, वायु और जल प्रदूषण और पोषक तत्वों की अधिकता, और पानी का मोड़ (बांध, बांध और नहरबंदी)। वर्तमान अध्ययन मध्य गंगा के मैदान में बढ़ते यूट्रोफिकेशन की ओर भी इशारा करता है और यह सीधे कार्बनिक पदार्थ के भविष्य और इसकी संरक्षण क्षमता को प्रभावित करता है। झीलें और नदियाँ वर्तमान में प्रमुख आकर्षण के केंद्र हैं जहाँ जैव विविधता की चुनौतियाँ दांव पर हैं और इस प्रकार बहु-प्रॉक्सी दृष्टिकोण के साथ यह अग्रणी अध्ययन हमें क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर भविष्य की स्थिरता के लिए परिदृश्य विकास योजनाओं पर काम करने की अनुमति दे सकता है।



चित्र 1. अध्ययन क्षेत्रों को दर्शाने वाला मानचित्र (त्रिपाठी एवं अन्य 2023)



सीमित उपलब्ध आंकड़ों के कारण जलवायु मॉडलर्स सटीक पुराजलवायु जानकारी प्राप्त करने में असमर्थ है। हालाँकि, इस प्रकार के मल्टी-प्रॉक्सी डेटा का उपयोग जलवायु मॉडलर्स द्वारा दक्षिण एशियाई जलवायु पैटर्न और भारतीय उपमहाद्वीप में इसके प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए किया जा सकता है, और इसलिए संभवतः विनाशकारी घटनाओं को भारी आर्थिक और मानवीय नुकसान करने से बचाया जा सकता है।

स्वाति त्रिपाठी, बिस्वजीत ठाकुर, बिनीता फर्त्याल एवं अनुपम शर्मा

वेम्बनाड आर्द्रभूमि, केरल में पारिस्थितिक परिवर्तनों के मूल्यांकन में डायटम की भूमिका का विश्लेषण

तटीय पारिस्थितिक तंत्र भूमि और महासागर के बीच स्थित गतिशील प्रणालियां हैं तथा प्राकृतिक आपदाओं और मानवीय गतिविधियों के संदर्भ में इनका प्रभाव व्यापक है, उदाहरण के लिए, जलवायु प्रतिकूलता, समुद्र स्तर में परिवर्तन, अवतलन, तलछट निर्वहन, सुपोषण और अम्लीकरण तटीय पारिस्थितिकी तंत्र महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करता है जिसमें भोजन और बायोमैटेरियल्स, वन्यजीव संरक्षण, कार्बन प्रच्छादन, तूफानी लहरों से सुरक्षा और कई अन्य प्रत्यक्ष आपूर्ति शामिल हैं। स्थलीय पारिस्थितिक तंत्रों की तुलना में, तटीय आर्द्रभूमियों का सतह क्षेत्र अपेक्षाकृत मामूली है, लेकिन वे उत्पादकता के मामले में सबसे विपुल पारिस्थितिक तंत्रों में से हैं। वनस्पति क्षेत्र और ज्वार की धाराएँ कई स्थलीय और समुद्री प्रजातियों के लिए महत्वपूर्ण वास स्थल के रूप में कार्य करती हैं, जो जंगली जानवरों की शरण और खाद्य आपूर्ति की एक विस्तृत श्रृंखला पेश करती हैं, परिणामतः उच्च जैवविविधता और विशिष्ट खाद्य संजाल होते हैं। पुरापारिस्थितिकी अभिलेख के लिए स्थलीय प्रतिनिधि जैसे पराग और वृक्ष-वलय, पौधे स्थूक जीवाश्म और जलीय जीवसमूह (डायटम्स) अतीत के जलवायु परिवर्तनों और जैविक प्रतिक्रियाओं के पुनर्निर्माण के लिए प्रासंगिकता प्राप्त कर रहे हैं।

खाद्य संजाल में डायटम को लिमनोलॉजिकल (सरोवरविज्ञान संबंधी) परिवर्तन और जलवायु परिवर्तन हेतु उपयोगी माना गया है। ये सूक्ष्म, एककोशिकीय शैवाल हैं जिनमें एक रेशमी कोशिका भित्ति होती हैं, जो उन्हें विभिन्न प्रकार के अनुप्रयोगों के लिए अद्वितीय बनाती हैं और जलवायु परिवर्तन के लिए एक अद्वितीय प्रॉक्सी के रूप में कार्य करती हैं क्योंकि वे पारिस्थितिक स्थिती की एक विस्तृत श्रृंखला के प्रति संवेदनशील हैं। तलछट अंतराल के भीतर प्रजातियों की प्रचुरता में भिन्नता का उपयोग जल रसायन, वर्षा और तापमान में पिछले परिवर्तनों का अनुमान लगाने के लिए किया जा सकता है। ये प्रजातियाँ झील के स्तर, पोषक तत्वों की उपलब्धता और अन्य पारिस्थितिक चर के

विश्वसनीय संकेतक के रूप में कार्य करती हैं। वे उत्प्रवाह (अपवेलिंग) और अपरदन प्रक्रियाओं के साथ-साथ वर्षा, सूरज की रोशनी और हवा की गति सहित विभिन्न मापदंडों का जवाब देते हैं। डायटम पर्यावरण की बदलती परिस्थितियों में तेजी से प्रतिक्रिया करते हैं और कई जैव-भू-रासायनिक घटकों के प्रति संवेदनशील होते हैं क्योंकि ये व्यापक रूप से फैले हुए, स्थिर, छोटे, रेशमी सामग्री में ढके होते हैं, और तलछट में अच्छी तरह से संरक्षित होते हैं। जलीय स्वास्थ्य और पानी की गुणवत्ता का आकलन अक्सर डायटम संयोजनों का उपयोग करके किया जाता है। उनका संयोजन झील के अम्लीकरण, यूट्रोफिकेशन, अलवण जल के प्रवाह, समुद्र के स्तर में परिवर्तन और पोषक तत्वों की उपलब्धता, और किसी भी जलीय वातावरण में जलवायु संबंधी अभिव्यक्तियों के पुनर्निर्माण में मदद करता है।

सतह तलछट मूल्यांकन ने दुनिया भर में बहुत ध्यान आकर्षित किया है क्योंकि यह उनके स्थानिक अस्थायी संचय और जलवायु संकेत के कारण पारिस्थितिक स्थितियों का आकलन करने का प्राथमिक तरीका है। हमने वर्तमान पारिस्थितिक स्थिति आर्द्रभूमि को नापने के लिए वेम्बनाड आर्द्रभूमि से स्थानिक डायटम संरचना और सतह तलछट में बहुतायत की जांच की। वेम्बनाड तटीय आर्द्रभूमि (रामसर साइट) सबसे बड़े उष्णकटिबंधीय मुहानों में से एक है और भारत के दक्षिण-पश्चिमी तट पर 9°00' और 10°40' N अक्षांश और 76°00' और 77°30' E देशांतर के बीच स्थित है (चित्र-1)। इस क्षेत्र में प्रति वर्ष 3200 मिमी की औसत वर्षा होती है, जो दलदल से घिरा हुआ है और इसे स्थानिक-समृद्ध पारिस्थितिक आवासों के लिए मान्यता प्राप्त है। प्राथमिक उत्पादकता का पता लगाने के लिए वेम्बनाड आर्द्रभूमि में डायटम के वितरण का उपयोग किया जाता है। डायटम विश्लेषण के आधार पर वर्तमान अध्ययन में पांच पारिस्थितिक क्षेत्रों की पहचान की गई है।



चित्र 1. वेम्बनाड तटीय आर्द्रभूमि के मानचित्र और क्षेत्र की तस्वीरें

ज़ोन I (G-16 से G-22) - यह क्षेत्र 18 से 25 अलग-अलग डायटम जेनेरा द्वारा-321 से 833 तक की आवृत्तियों के साथ चिह्नित किया गया है। यह *साइक्लोटेला*, *थलासियोसिरा* और *औलाकोसीरा* जैसे लवण और अलवण जल के प्लवकीय डायटम की उच्च बहुतायत से चिह्नित है। निम्न के मध्यम प्लवकीय डायटम की उपस्थिति में *स्टेफ़नोडिस्कस*, *एक्टिनोसाइक्लस*, *एक्टिनोप्टिकस*, *ट्राईसेराटियम*, *कैम्पिलोडिस्कस*, *बिडुल्फिया*, *हाइलोडिस्कस* और *डिस्कोस्टेला* शामिल हैं। नितलस्थ (बेंथिक) डायटम में मुख्य रूप से *निज़श्चिया पांडुरिफोर्मिस, निज़श्चिया क्लॉसी, टबेलेरिया, डिप्लोनिस, नेविकुला, अलनारिया अल्ना, यूनोशिया* और *पिनुलेरिया* शामिल हैं। बेंथिक डायटम की अल्प से मध्यम संख्या में *कोकोनिस*, *गोम्फोनेमा*, *एम्फ़ोरा*, *बेसिलरिया*, *गायरोसिग्मा*, *एक्नेंथेस* और *कैलोनिस* सम्मिलित हैं, जबकि दुर्लभ उपस्थिति *सुरीरेला*, *प्लैनोथिडियम*, *प्लुरोसिग्मा*, *फ्रैगिलेरिया*, *सेलाफोरा*, *फ्रस्टुलिया*, *एनसाइनोमा*, *एक्नेंथिडियम* द्वारा दिखाई गई है।

ज़ोन-II (जी-13 से जी-15) - इस क्षेत्र में पाई जाने वाली डायटम प्रजातियों में 18 से 22 जेनेरा शामिल हैं, जिनकी गिनती 458 से 910 के बीच है। इसमें *औलाकोसीरा* और *एक्टिनोसाइक्लस* की कम आवृत्ति के साथ प्लैंक्टिक डायटम्स *थलासियोसिरा*, *कैम्पिलोडिस्कस*, *साइक्लोटेला* का प्रभुत्व है। बेंथिक रूप में *डिप्लोनिस* और *निज़श्चिया* का वर्चस्व है, इसके बाद *टबेलेरिया*, *एम्फ़ोरा*, *बेसिलरिया* और *नेविकुला* हैं। कम आवृत्ति वाले डायटम का प्रतिनिधित्व *यूनोशिया*, *गोम्फोनेमा* और *गायरोसिग्मा* द्वारा किया जाता है।



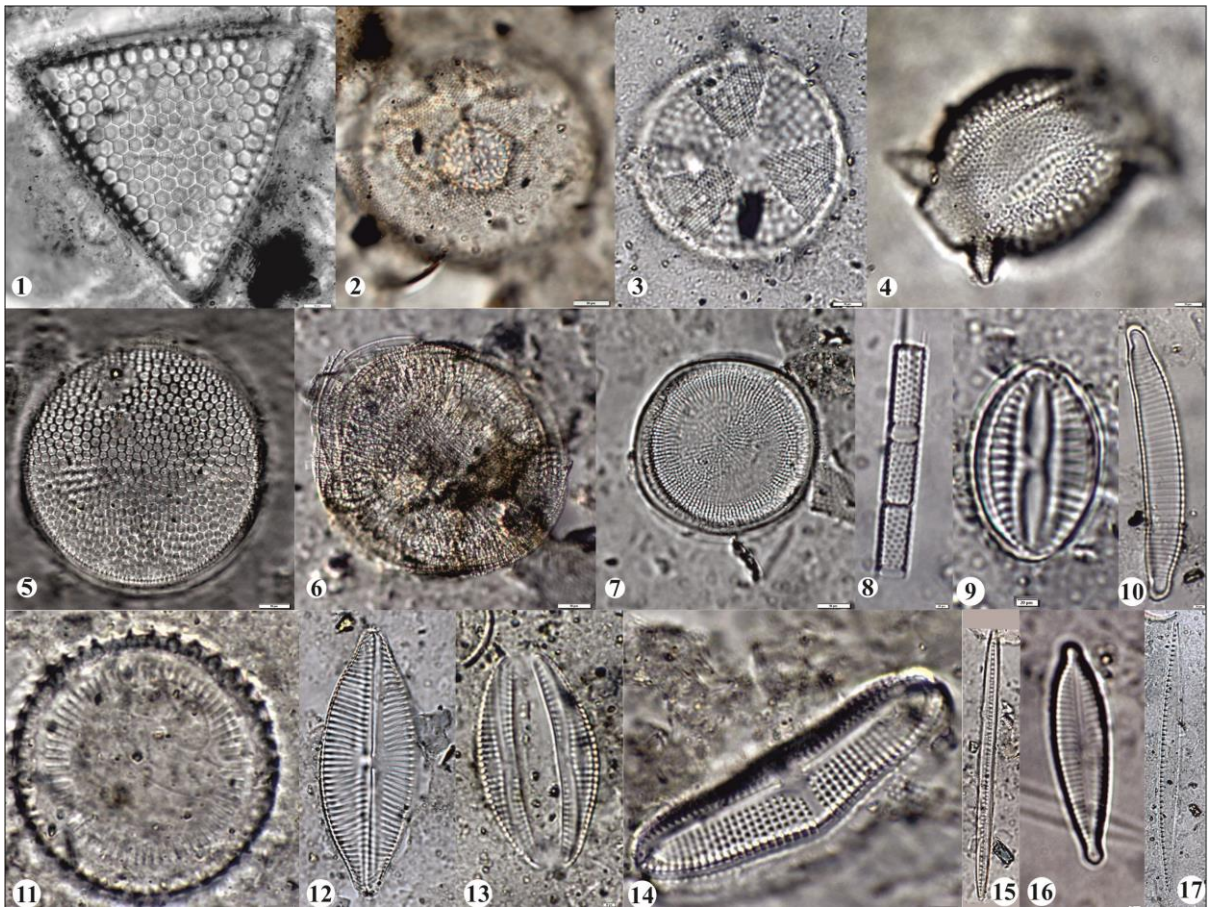
इस क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्शाने वाले डायटम *प्लुरोसिग्मा*, *एक्नेंथिडियम*, *क्रेटिकुला*, *पिनुलरिया*, *सुरीरेला*, *फ्रस्टुलिया*, *टबेलेरिया*, *कैलोनिस*, *हंत्ज़शिया*, *प्लैनोथिडियम* और *सिंबेलोप्ल्यूरा* हैं।

ज़ोन-III (जी-6 से जी-12)- इस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व 16 से 24 डायटम टैक्सा द्वारा किया जा रहा है, जबकि उनकी संख्या 416 से 842 के बीच भिन्न है। इस क्षेत्र को फिर से बेंथिक की तुलना में उच्च प्लैंक्टिक डायटम द्वारा दर्शाया गया है। इस क्षेत्र में शामिल प्रमुख प्लैंक्टिक डायटम में *थैलासियोसिरा*, *साइक्लोटेला* और *कैम्पिलोडिस्कस* शामिल हैं, जबकि *पोडोसिरा*, *एक्टिनोसाइक्लस*, *औलाकोसीरा*, *बिड्डल्फिया*, *स्टेफानोडिस्कस* और *मेलोसिरा* बहुत कम उपस्थिति दिखा रहे हैं। *निज़श्चिया*, *डिप्लोनिस*, *गायरोसिग्मा*, *बेसिलरिया*, *एम्फ़ोरा*, *यूनोशिया*, *नेविकुला*, *पिनुलेरिया* और *टबेलेरिया* प्रचुर मात्रा में उपस्थिति दर्शाने वाले बेंथिक डायटम हैं।

ज़ोन-IV (जी-3 से जी-5) - इस क्षेत्र में मौजूद अलग-अलग डायटम टैक्सा 17 से 21 जेनेरा तक हैं, जबकि फ्रस्टुल काउंट 406 से 546 के बीच है। प्लैंक्टिक डायटम बेंथिक डायटम से बहुत अधिक हैं। प्रमुख प्लैंक्टिक डायटम *साइक्लोटेला* और *थैलासियोसिरा* हैं, जबकि कम संख्या में *एक्टिनोसाइक्लस*, *मेलोसिरा*, *पोडोसिरा*, *कैम्पिलोडिस्कस*, *एक्टिनोप्टाइकस*, *बिड्डल्फिया*, *औलाकोसीरा* और *ट्राईसेराटियम* दर्ज की गई है। बेंथिक रूपों में *निज़श्चिया*, *डिप्लोनिस*, *सुरीरेला*, *फ्रैगिलरियोप्सिस*, *टैबुलरिया*, *एम्फ़ोरा*, *गायरोसिग्मा*, *नेविकुला*, *कोकोनिस*, *निज़स्चिया लेविडेन्सिस*, *एक्नेंथिडियम*, *फ्रस्टुलिया*, *कैलोनिस*, *बैसिलरिया*, *एनोमोनीस*, *गोम्फ़ोनिमा* और *एनकोनिमा* सम्मिलित हैं।

ज़ोन-V (जी-1 - जी-2)- इस क्षेत्र में 408 और 504 की आवृत्ति के साथ 21 और 22 प्रतिनिधि टैक्सा के डायटम शामिल हैं। वर्तमान क्षेत्र को प्लैंक्टिक के ऊपर उच्च बेंथिक डायटम संयोजन द्वारा दर्शाया गया है। प्रमुख बेंथिक डायटम का प्रतिनिधित्व यूनोशिया द्वारा किया जा रहा है, इसके बाद *नेविकुला*, *कोकोनिस*, *गोम्फोनेमा*, *एक्नेंथिडियम*, *पिनुलरिया*, *अलनारियाल्ना* और *निज़श्चिया* हैं। *स्टॉरोनिस*, *अकनेथेस*, *प्लुरोसिग्मा, टैबुलरिया, फ्रस्टुलिया, टैबुलरिया, बैसिलरिया, सेलाफोरा* और *फ्रैजिलरियोप्सिस* जैसे डायटम का छिटपुट रिकॉर्ड पाया गया है। मध्यम संख्या के साथ रिकॉर्ड किए गए प्लैंक्टिक डायटम में *औलाकोसीरा* और *साइक्लोटेला* सम्मिलित हैं, जबकि छिटपुट उपस्थिति में *स्टेफ़नोडिस्कस, मेलोसिरा* और *एक्टिनोसाइक्लस* शामिल हैं।

वर्तमान अध्ययन में डायटम समूह और उनके ज़ोनेशन पानी की लवणता, समुद्री जल का भूमि की तरफ बढ़ना, लिम्निक चरित्र, पानी की गहराई एवं पोशाक तत्व विश्लेषण की स्थिति में परिवर्तन को दर्शाते हैं, जो जलवायु परिवर्तन, समुद्र-स्तर के उतार-चढ़ाव और मानवजनित प्रतिक्रियाओं से संबंधित हो सकते हैं। डायटम ताजे, खारे और समुद्री वातावरण के बीच परिवर्तन का संकेत देते हैं, जो वर्षा और समुद्र के स्तर की परस्पर क्रिया को दर्शाते हैं।



चित्र 2. वेम्बनाड तटीय आर्द्रभूमि के तलछट से बरामद कुछ महत्वपूर्ण डायटम मॉर्फोटाइप्स

वेम्बनाड (आर्द्रभूमि) (वेटलैंड), केरल तट *थलासियोसिरा* और *साइक्लोटेला* के प्रभुत्व को दर्शाती है, जिसमें *कैम्पाइलोडिस्कस*, *यूनोशिया*, *डिप्लोनिस*, *निज़श्चिया*, *नेविकुला*, *टैबुलरिया*, *बेसिलरिया*, *गोम्फोनेमा*, *पिनुलरिया* और *एम्फ़ोरा* की मध्यम से कम बहुतायत है। प्लैंक्टिक डायटम की उच्च बहुतायत उच्च जल स्तंभों वाले क्षेत्र को इंगित करती है। यह इस उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में विद्यमान उच्च मानसूनी अवधियों के कारण हो सकता है। इस क्षेत्र में लगातार ज्वारीय प्रभाव भी नमक और मीठे पानी के मिश्रण को दर्शाता है, जो आर्द्रभूमि में ताजे, खारे और समुद्री सेटिंग्स के वर्गीकरण के साथ चर सूक्ष्म वातावरण बनाते हैं। इन अभिलिखत डायटम टैक्सा के साथ-साथ कई अन्य डायटम जेनरा भी हैं जिनकी सामयिक उपस्थिति भी तटीय आर्द्रभूमि में चिह्नित है। *साइक्लोटेला*, *थैलासियोसिरा* का प्रभुत्व, अधिक नमक सहिष्णु वातावरण वाले स्थलों को दर्शाता है। डायटम और समुद्री फाइटोप्लैंक्टौन जलीय-पारिस्थितिकी का संकेत देता है। इन परिणामों की पुष्टि कांगो बेसिन के गहरे समुद्र के तलछट कोर से भी की गई है जो 190ka के लिए जलवायु परिवर्तन को दर्शाता है। अध्ययन में पाया गया है कि *औलाकोसीरा* को उच्च आवृत्तियों को प्राप्त करने और मृत्यु के बाद आसानी से डूबने के लिए भारी सिलिकीकृत



कोशिकाओं की आवश्यकता होती है, और पानी के स्तंभ में उनकी उपस्थिति को बनाए रखने के लिए विक्षोभ की आवश्यकता होती है। *टबेलेरिया* की प्रचुरता कम इलेक्ट्रोलाइट, ओलिगोट्रोफिक, सर्कमन्यूट्रल या थोड़ा अम्लीय जल में होती है। आमतौर पर देखा गया है कि *डिप्लोनिस, एम्फ़ोरा* और *कैम्पिलोडिस्कस* जैसे जेनेरा की प्रजातियाँ सामान्यतः समुद्री, तटीय, या खारे वासों में अति विविध हैं और वर्तमान अध्ययन से इसकी पुष्टि भी हुई है, इन निष्कर्षों को ओहरिड झील और प्रेस्पा झील से भी प्रमाणित किया गया है। डायटम को जोड़ने वाले तंत्र, जैसे कि झील हाइड्रोकैमिस्ट्री, और जलवायु को अक्सर खराब समझा जाता है, जबकि झील के पानी की लवणता में पिछले बदलावों को खोजने के लिए कई शोधों में जीवाश्म डायटम का उपयोग किया गया है। कुछ ने झील के स्तर की विविधताओं और अन्य जलवायु संबंधी कारकों का पुनर्निर्माण किया है, जो प्लैंक्टिक बनाम बेंथिक डायटम के सापेक्ष बहुतायत में परिवर्तन के साथ-साथ अन्य डायटम परिवर्तन का उपयोग करते हैं। पाया गया है कि झील के स्तर में बदलाव और अन्य जलवायु संबंधी कारकों के पुनर्निर्माण हेतु प्लैंक्टिक बनाम बेंथिक डायटम के सापेक्ष बहुतायत में परिवर्तन के साथ-साथ अन्य डायटम परिवर्तन भावी स्थिरता अति आवश्यक हैं। डायटम न केवल वर्तमान के लिए सहायता प्रदान करता है बल्कि अतीत के पारिस्थितिक परिवर्तनों की झलक भी देता है और इसका उद्देश्य पारिस्थितिकी तंत्र प्रबंधन के संदर्भ में भावी परिदृश्य का विकास प्रदान करना है।

पूजा तिवारी

कैरोफाइट शैवाल, स्थलीय जैविक उद्भव और विविधता: स्थलीय पादप के पूर्वज

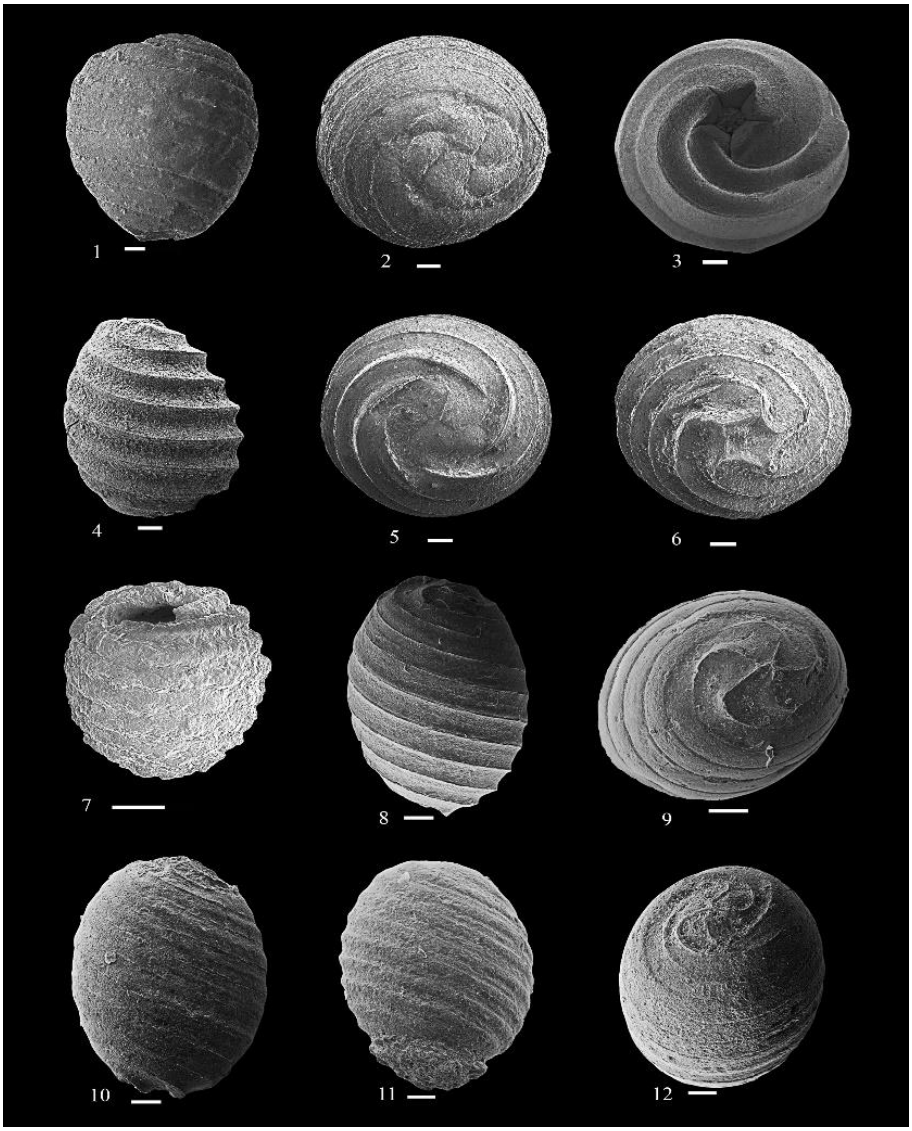
आज के संसार को वनों और उन पर आश्रित जीव-जंतुओं से समृद्ध करने हेतु गहन अतीत में स्थलीय पादप (ब्रायोफाइट्स) को जन्म देने वाले मृदु जलीय हरे कैरोफाइट शैवाल पौधों का वर्गीकरण समूह कैरोफाइटा है। इस फाइलम के सभी हरे शैवाल अधिकतर महाद्वीपों और द्वीपों पर स्थित असमुद्रीय खारे व मृदुजल की झीलों, तालाबों, नदियों, व स्थायी तथा अस्थाई जलभराव क्षेत्रों में सतह से नीचे जल मे फलते-बढ़ते दृष्टिगत होते हैं। इस फाइलम के सदस्य को कैरोफाइट्स वर्गीकरण में क्लोरोफाइटा (क्लोरोफाइट्स) में कुछ उभय-निष्ठ गुणों के कारण सम्मिलित किया गया है। इन गुणों की वजह उनके थायलाकोइड्स में उपस्थित क्लोरोफिल (हरे वर्णक) है जिस के कारण कैरोफाइट्स और क्लोरोफाइट्स दोनों हरे रंग के, प्रकाश संश्लेषक और यूकेरियोटिक हैं। क्लोरोफाइट्स की ही



तरह कैरोफाइट्स में क्लोरोफिल और क्लोरोफिल "बी" होते हैं लेकिन कैरोटीनॉयड अपेक्षाकृत कम मात्रा में होते हैं।

भूवैज्ञानिक समय-सारिणी के सिल्यूरियन कल्प के अंतिम प्रहर मे लगभग 42 करोड़ वर्ष पूर्व के अवसादी संस्तरों से प्राप्त कैरोफाइट शैवाल जीवाश्मों की प्राप्ति से प्रारंभ इनकी उद्भव यात्रा अत्यंत रोचक है तथा विज्ञान के मूल महत्व के कठिनतम प्रश्नों की ओर ध्यान ले जाती है। इसी क्रम में जीवाश्मों से ज्ञात भारतीय नियोजीन कल्प के लगभग 2 करोड़ और उससे कम वर्षों पूर्व की समयावधि के असमुद्रीय अवसादी संस्तरों से प्राप्त होने वाले कैरोफाइट जीवाश्म और उनके स्थानीय जीवित वंशज भी पृथ्वी के 'विकास की समय सारणी' का हिस्सा हैं और अध्ययन के लिए अपने देश में सहज सुलभ हैं। भारतीय कैरोफाइट जीवाश्मों का प्रारंभिक अध्ययन बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के संस्थापक प्रोफेसर बीरबल साहनी ने किया था जो आज भी बरकरार है।

मृदु जलीय कैरोफाइट पौधों का अध्ययन वनस्पतिशास्त्र में सामान्य विधि से पूर्ण पौधे के गुणों के आधार पर किया जाता है। परंतु अवसादी संस्तरों से प्राप्त होने वाले विभिन्न सूक्ष्म जीवाश्मों के समूह मे उपलब्ध जीवाश्मीकृत हो सकने वाले ज़ायरोगोनाइट्स कैरोफाइट शैवाल की उपस्थिति बताते हैं, ज़ायरोगोनाइट्स, लगभग सभी वर्तमान कैरोफाइट्स प्रजातियों के कैल्सिफाइड बीज की तरह हैं, जो पांच समावेशी कोशिकाओं से बने होते हैं और एक अंतर्निहित अंडे के आस-पास घुमावदार ढंग से बंधे होते हैं। यह सालों साल शुष्क और निष्क्रिय रहने के बाद जल में उपयुक्त परिस्थितियों मे शैवाल पौधे के रूप मे पनप जाते हैं। वर्तमान सभी कैरोफाइट प्रजातियों में कोशिकाएं केवल बाएं हाथ की ओर से घूम कर ऊपर की ओर जाती हैं लेकिन पर्मियन/ट्राइएसिक महाविनाश के पहले कुछ प्रजातियों मे पाँच या अधिक कोशिकाएं दाहिने ओर से मुड़ती हुई ऊपर जाती थीं। यह अब केवल बाएं और पी/टी महाविनाश के पहले बाएं और दाएं दोनों तरह के कोशिकाओं के कैरोफाइट्स के ज़ायरोगोनाइट्स में घुमाव से ऊपर जाने का वैज्ञानिक शोध बहुत रुचिकर लेकिन दुरूह और चुनौती-पूर्ण विषय है। प्राणियों, वनस्पतियों तथा रासायनिक योगों में दायें और बाएं हाथ की हस्तता (लेफ्ट और राइट हैंडेडनेस) उनके स्वभाव व प्रभाव में बहुत अंतर कर देते हैं और यह हस्तता में विभिन्नता के कारण अंतर क्यों और कैसे आता है जानने के लिए विभिन्न विज्ञान विषयों के विशेषज्ञ सक्रिय रूप से अध्ययन में जुटे हुए हैं।



चित्र 1. मोहंद क्षेत्र से ज़ायरोगोनाइट्स का जीवाश्म (नंदिता तिवारी एवं उदय भान, 2021, जर्नल ऑफ़ पैलेंटोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया)

हाल के अध्ययन सुझाव देते हैं कि कैरोफाइट पादपों के एक पूर्वज वंशज जमीनी सतह के लिए उद्भव की दिशा में उभरे और सफलता प्राप्त कर अपनी संख्या और क्षेत्रवृद्धि प्रारंभ के बाद वास्तविक भूमि पौधों में विकसित होकर वनस्पति-प्रकार की दिशा बदल दी। इस जलीय पादप के भूमि पर उद्भव द्वारा अवतरण की विशाल जैविक घटना से पृथ्वी का संपूर्ण जैव-रसायन बदल गया, और वातावरणीय परिवर्तनों में अनुकूलता और मिट्टी की स्थिति में सुधार के कारण पृथ्वी पर विविध जीवन रूपों का उद्भव हुआ।



चित्र 2. जीवित कैरोफाइट शैवाल और ज़ायरोगोनाइट्स (स्रोत: विकिपीडिया)

पिछले कुछ दशकों में, कैरोफाइट पादपों के अध्ययन ने अत्यंत आधुनिक तकनीकों से कार्य करने वाले वनस्पतिशास्त्रियों को आकर्षित किया क्योंकि पृथ्वी ग्रह पर थलचर जगत के जन्म और विकास का विषय उनकी सहज मे दृष्टिगत नहीं होता पर कैरोफाइट के अध्ययन से स्पष्ट आधारभूत महत्वपूर्ण निर्णायक भूमिका दिखती है।

भूमिगत पौधों के विकास के लिए एक पूर्वज जैसा होने के कारण, कैरोफाइट पादपों ने पृथ्वी की भूमि पर दिखाई दे रहे भली-भाँति विकसित हो चुके विशाल साम्राज्य की नींव डाली। कैरोफाइट शैवाल अधिकतर नदियों, तालाबों और झीलों में और वर्षाकालीन अल्प समयावधि के जल संचय क्षेत्रों मे डूबी हुई वनस्पतियों के साथ पनपते हैं, जिससे कार्बन और पोषक तत्वों के संतुलन, और जल स्पष्टता जैसे जीव पर्यावरण गुणवत्ताओं से जल क्षेत्र युक्त हो जाता है। वे पर्यावरण गुणवत्ताओं में होने वाले बदलावों के लिए भी संवेदनशील होते हैं, और इस तरह यह शैवाल पर्यावरण की स्थिति के अच्छे संकेतक होते हैं।

कैरोफाइट जीवाश्म अंतिम 42.5 करोड़ वर्षों में होने वाले परिवर्तनों को आत्मसात कर अपनी उद्भव यात्रा के माध्यम से प्रगट होते हैं। इसलिए जीवाश्म टैक्सा गैर-समुद्री अवसादी संस्तरों के लिए मार्गदर्शक होते हैं तथा जीवाश्मिकी, जैविक वर्गीकरण और पुराजैवपारिस्थितिकी अध्ययनों में मूल्यवान होते हैं।

कैरोफाइट पादप व सूक्ष्म जीवाश्मों के साथ मिलने वाले उनके अवयव ज़ायरोगोनाइट्स, ऑस्ट्राकोड और डायटम के समान वर्तमान और पूर्व जीव परिसर के सूचक के रूप में उपयोगी सिद्ध हुए हैं और इस प्रकार भूतकालीन पर्यावरण और वर्तमान पारिस्थितिकी के बीच एक संपर्क बनाते हैं। अब कई प्रकाशित अध्ययन उपलब्ध हैं जहां भूतकालीन पर्यावरण के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए कैरोफाइट सफलतापूर्वक प्रयोग किए गए हैं। जीवाश्म कैरोफाइट पुरापारिस्थितिकी के अध्ययन में झील के पानी के स्तर और गैर-समुद्री जल राशियों में खारे पानी के स्तर के सूचक के रूप में उपयोग किए गए हैं।



पुरापारिस्थिकी के साथ ही साथ कैरोफाइट ज़ायरोगोनाइट का उपयोग सीनोजोइक और सीनोजोइक से पहले के कालखंडों के जैवस्तरकी संबंधों और पुराजैव-भौगोलिक अध्ययनों में व्यापक रूप से उपयोग में लाया गया है। स्तनपायी जीवों के जीवाश्म, नैनोजीवाश्म जैसे अन्य जीवाश्म समूहों के साथ कैरोफाइट को जोड़कर और चुंबकीय ध्रुवीय समय स्केल के साथ एकीकरण ने जैवस्तरकी (बायोजोनेशन) को बहुत अधिक कारगर बना दिया है।

उनकी भू-वैज्ञानिक उपयोगिता के अलावा, कैरोफाइट शैवाल एक महत्वपूर्ण पारिस्थितिक सेवा भी देते हैं क्योंकि कैरोफाइट खाद्य श्रृंखला और खाद्य संजाल की स्थलीय जलराशियों में प्रायः एक मुख्य घटक होते हैं, क्योंकि वे घोंघों, शाकाहारी मछलियों, क्रे फिश, जल पक्षियों जैसे विभिन्न जीवों के भोजन के स्रोत होते हैं।

भोजन के साथ साथ घने विकसित कैरोफाइट शैवाल पादप सहजीवों को आश्रय और शिकारी जीवों से ज्यादातर पेरिफाइटिक सूक्ष्मजीवों और अस्थिर शरीर वाले जीवों के लिए सुरक्षित वास देकर गैर-समुद्री जल राशियों में जैव विविधता को बनाए रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

कैरोफाइट प्रवाल जल मे उपस्थित CaCO3 की बड़ी मात्रा को अविलंब निक्षेपित करके जल को स्पष्ट और पारदर्शी बनाते हैं और Ca^{2+} को घटा देते हैं। कैरोफाइट अन्य पोषक तत्वों के साथ कार्बन और ऊर्जा भंडारण में भी शामिल होते हैं और इस तरह उर्वरकता को नियंत्रित करते हैं और पानी की जैवभूरासायनिकी में बदलाव लाते हैं। इस प्रकार कैरोफाइट जल मे मौजूद रासायनिक अवयवों का आटोक्थोनस अवसादन व शैवाल पौधों द्वारा अवशोषण कर के संयुक्त रूप से कैल्शियम कार्बोनेट के साथ फास्फोरस को उत्पादित करता है।

स्थलीय जलराशियों में सायनोबैक्टीरिया के पनपने में बाधक कैडमियम और लेड जैसे भारी धातु और हेक्साक्लोरोबेंजीन जैसे रसायन को सफलतापूर्वक कैरोफाइट पादपों द्वारा हटाया जा सकता हैं और भी दिलचस्प बात यह है कि कैरोफाइट पादपों की उपस्थिति से कृषि क्षेत्रों की उर्वरकता बढ़ जाती है तथा इसके कीचड़ को चिकित्सीय उपचार के लिए भी उपयोग किया जाता है। इसके अलावा मछली पालन, जल शोधन, कीटनाशक नियंत्रण, एक विशेष होम्योपैथिक दवाई, चीनी शोधन और पॉलिश में कैरोफाइट पादपों का उपयोग किया जाता है।

इस प्रकार असमुद्रीय जलराशियों में उपयोगी कैरोफाइट पादपों के पनपने से जल में रहने वाले विभिन्न जीवों को एक साफ रहने योग्य जलीय पर्यावरण मिलता है। इन उपयोगिताओं के चलते जीवाश्म और जीवित कैरोफाइट का अध्ययन रोचक हो जाता है और यह पहले की पंक्तियों मे इंगित किए गए विशेष बिंदुओं पर चुनौतीपूर्ण अनुसंधान का आज भी अवसर प्रदान करते हैं।

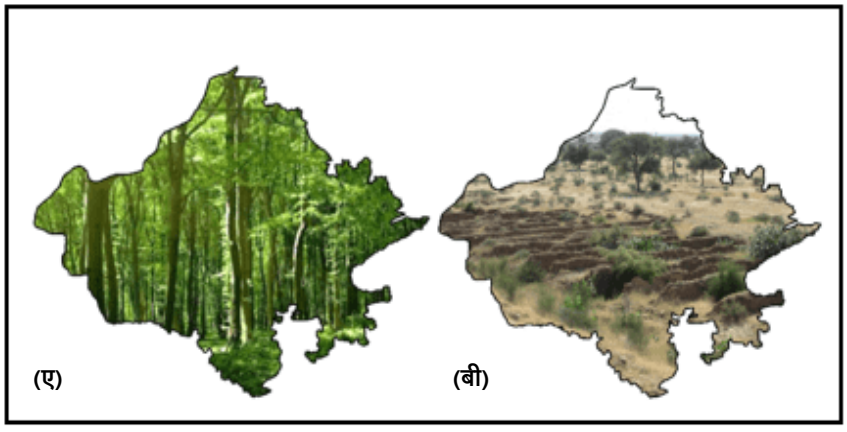
नंदिता तिवारी

राजस्थान की मरुभूमि पर अतीत में पनपी हरियाली

भारत के सबसे लोकप्रिय पर्यटन स्थलों में से एक राजस्थान, अपनी प्राचीनतम परंपराओं के लिए जाना जाता है। इस राज्य के स्वादिष्ट व्यंजन, शाहीपन की अनुभूति एवं बारीक नक्काशी वाली वास्तुकला, यहाँ के आगंतुकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। परंपरा और इतिहास से परिपूर्ण इस राज्य की अधिकतर भूमि बंजर है जो कि मुख्यतयः चट्टानों और रेतीली मिट्टी से ढकी है। यहां प्रति वर्ष मात्र 30-60 सेंटी मीटर ही वर्षा होती हैं। यहां के गर्म व शुष्क मौसम के चलते मरुस्थलीय कांटे वाले पौधे बहुतायत में पाए जाते है जबकि सदाबहार वनस्पति का अभाव देखा गया है।

"राजस्थान के जीवाश्म रिकॉर्ड से पता चलता है कि वर्तमान शुष्क मरुस्थलीय परिस्थितियों के विपरीत पैलियोजीन (Paleogene, ~56 Mya) के आसपास सदाबहार वन प्रजातियों की विद्यमानता थी "

पिछले कुछ वर्षों में पुराविज्ञानियों ने राजस्थान के पश्चिमी सीमांत प्रांत में स्थित गुड़ा लिग्नाइट (भूरा कोयला) खदान, बीकानेर (पैलियोसीन-इओसीन युग, ~56 मि. वर्ष) से जीवाश्म एकत्रित किए हैं, जो कि सदाबहार पौधों से मिलते-जुलते हैं। ये जीवाश्म फल, फूल, पत्तियों और तनों आदि की छाप के रूप में गुड़ा लिग्नाइट खदान से निकाले गए हैं। जीवाश्म, अतीत की जीवन शैली का प्रत्यक्ष प्रमाण होते हैं, इसीलिये प्राचीन काल में पाए जाने वाली वनस्पतियों का अध्ययन जीवाश्म अवशेष के आधार पर किया जा सकता है।

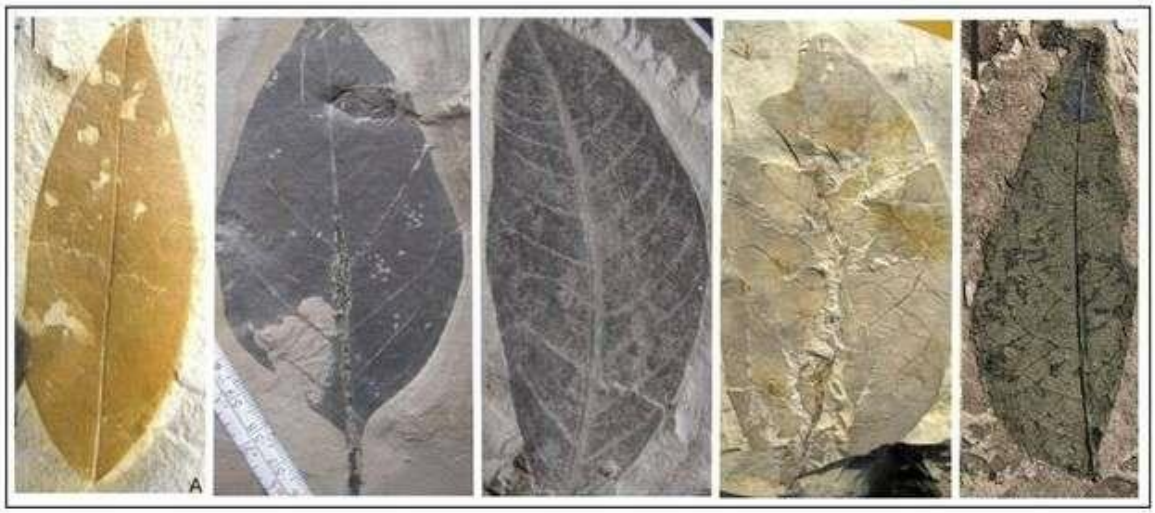


चित्र 1. राजस्थान वनस्पति (ए) प्रारंभिक पेलियोजीन (~56Mya)

इस खदान से मुख्यतः *एपोरोसा एक्यूमिनेटा* (*Aporosa acuminata*) (फाइलेंथेसी), *गार्डेनिया* (*Gardenia*) (रुबिएसी), *होलिगारना ग्रहामाई* (*Holigarna grahamii*) (एनाकार्डिएसी), *टेरीगोटा एलाटा* (*Pterygota alata*) (मालवेसी), *साइज़ीजियम क्यूमिनी* (*Syzygium cumini*) (मिरटेसी), *युवेरिया ज़ेलेनिका* (*Uvaria zeylanica*) (एनोनेसी), *डायोस्कोरिया* (*Dioscorea*) (डाइस्कोरीऐसी), *स्वीटीनिया* (*Swietenia*)

(मिलिऐसी) जैसे पौधों से समानता रखने वाली जीवाश्म पत्तियाँ, साथ ही *सराका अशोका* (*Saraca asoca*) और *कजानस क्रैसस* (*Cajanus crassus*) (फैबेसी) के फलों से मिलते-जुलते दो फलीदार फल भी मिले हैं। पत्तियों कि आकृति विज्ञान, जैसे कि उनका आकार, शिराओं की रचना (venation) आदि प्रजातियों के स्तर पर अत्यधिक संरक्षित होने के कारण उनके पहचान का मूल आधार होती है, इसीलिए जीवाश्म को उनकी आकृति विज्ञान के आधार पर पहचाना जाता है। जीवाश्मों की पहचान के लिए इनकी तुलना विभिन्न जीवित समूह से, समान आकृति विज्ञान के आधार पर की जाती है। तत्पश्चात अत्यधिक समानता रखने वाले जीवित समूह को जीवाश्म का आधुनिक एनालॉग (modern analogue) निर्धारित किया जाता है।

ऊपर वर्णित जीवाश्मों के ज्यादातर आधुनिक एनालॉग पश्चिमी घाटी के उच्च वर्षा और आर्द्र परिस्थितियों से परिपूर्ण सदाबहार जंगलों में मिलते हैं। सदाबहार जीवाश्मों के अवशेष यह इंगित करते हैं कि प्रारंभिक पैलियोजीन की जलवायु पश्चिमी घाटी के जलवायु के समान थी, वर्तमान की तुलना में जहां राजस्थान में शुष्क एवं मरुस्थलीय स्थिति पाई जाती है। इस प्रकार भारतीय जीवाश्म का विस्तृत अध्ययन पुरा-भूगोल वितरण और विकासात्मक इतिहास (evolutionary history) के दृष्टिकोण से जरूरी है, साथ-ही-साथ अतीत के झरोखों से राजस्थान की पुराजलवायु एवं पुरावनस्पति को जानने का एक सुनहरा अवसर प्रदान करता है।



चित्र 2. राजस्थान के पश्चिमी सीमांत प्रांत में स्थित गडा लिग्नाइट खादान

प्रारंभिक पैलियोजीन के दौरान, भारतीय उपमहाद्वीप भूमध्य रेखा (~10°N) के पास स्थित था, इस पुराभू-मध्यरेखीय (paleoequatorial position) के दौरान, उष्ण और आर्द्र जलवायु की स्थिति मौजूद थी, जो कि उष्णकटिबंधीय सदाबहार तत्वों के प्रचुर विकास के लिए अनुकूल वातावरण है। किसी भी क्षेत्र के वातावरण की परिस्थितियां वहां



के जैव भौगोलिक वितरण और वहां के पौधों की समृद्ध प्रजातियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। पुराभूमध्य रेखा से उत्तरी गोलार्ध की ओर बढ़ने के कारण भारतीय उपमहाद्वीप की जलवायु परिस्थितियों में भारी परिवर्तन हुआ, जिसने वहां की वनस्पतियों पर अपना प्रभाव डाला। जलवायु परिवर्तन के कारण वहाँ पर्यावरण निस्पंदन का निर्माण हुआ, जिसमें कुछ टैक्सा बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुकूल हो गई और जीवित रहीं, जबकि अन्य टैक्सा परिस्थितियों के अनुकूल ना ढलने के कारण विलुप्त हो गई या अन्य अधिक उपयुक्त जलवायु क्षेत्रों जैसे की पश्चिमी घाट और दक्षिण पूर्व एशिया में स्थानांतरित हो गए।

काजल चंद्रा, अनुमेहा शुक्ला एवं आर. सी. मेहरोत्रा

कार्बनमय शेलों (कार्बोनेसियस शेल्स) और कोयले में विट्रीनाइट का परिपक्वता अध्ययन : हाइड्रस पायरोलिसिस से प्राप्त अंतर्दृष्टि

सिल्यूरियन युग के बाद की तलछटी चट्टानों में विट्रीनाइट की उपस्थिति पेट्रोलियम प्रणालियों में कार्बनिक पदार्थों की तापीय परिपक्वता का अनुमान लगाने के लिए उपयोगी है। विट्रीनाइट का बढ़ता प्रतिबिंब, मुख्य रूप से सुगंधितता (ऐरोमेटिसिटी) द्वारा संचालित है और अपने विकासवादी (इवोल्यूशनरी) मार्ग में, समय और तापमान विशेषताओं पर निर्भर होता है। इस अध्ययन ने इज़ोटेर्माल हाइड्रस के माध्यम से कोयला युक्त संस्तर और नमूनों के समीपस्थ कार्बनमय शेलों (कार्बोनेसियस शेल्स) का मूल्यांकन किया है। इस अध्ययन में पाइरोलिसिस (HP) विट्रीनाइट के परिपक्वता मार्गों में अंतर की तुलना करने हेतु नमूना अवशेषों का विश्लेषण किया गया। विट्रीनाइट परावर्तन (VRo), भू-रासायनिक स्क्रीनिंग परीक्षण (कार्बनिक कार्बन और क्रमादेशित तापमान पाइरोलिसिस), और इन्फ्रारेड स्पेक्ट्रोस्कोपी जांच के लिए भारतीय और उत्तरी अमेरिकी घाटियों के नमूने शामिल थे जो कि खनिज मैट्रिक्स, सुगंधितता की प्रारंभिक डिग्री, कार्बनिक पदार्थ के प्रकार, स्तरीकृत आयु, और निक्षेपण वातावरण के माध्यम से विट्रीनाइट विकास में अंतर का अध्ययन करते है। एचपी (HP) अवशेषों की जैविक सामग्री थर्मल तनाव के लिए सहज प्रतिक्रिया को दर्शाती है, उदाहरण के लिए, कुल कार्बनिक कार्बन (टीओसी), पाइरोलाइज़ेट (S2), और बढ़ते एचपी तापमान के साथ हाइड्रोजन इंडेक्स, सी-फैक्टर सहित अवरक्त (इन्फ्रारेड) प्रॉक्सी और CH2/CH3 आम तौर पर बढ़ती तापीय परिपक्वता के साथ घटते हैं, जो CO_2 उत्पन्नता के माध्यम से O की हानि का संकेत देते हैं, और स्निग्ध कार्बनिक पदार्थों का तापीय विखंडन होता है। Tmax, प्रोडक्शन इंडेक्स (PI), और VRo एचपी तापमान के संबंध में सहज ज्ञान युक्त वृद्धि दिखाते हैं। कम-से-कम



परिपक्व नमूने (0.48 ± 0.05% VRo) ने आमतौर पर सबसे ज्यादा परिपक्वता परिवर्तन दर्शाया है, जबकि सबसे अधिक परिपक्व नमूनों (0.99 ± 0.06% VRo) ने आमतौर पर सबसे कम परिवर्तन दर्शाया है। यह अवलोकन उच्च गतिज बाधाओं के अनुरूप है जो कि सुगंधित विट्रीनाइट (उच्च बंधन पृथक्करण ऊर्जा से परिपूर्ण) में अधिक प्रतिक्रिया का कारण है। विट्रीनाइट के विचलन के दौरान एचपी कोयले और कार्बनमय शेल के विट्रीनाइट टुकड़े में गैस निकासी रिक्तिकाएं और संकुचन दरारें बनने का कारण बनता है। कोयले और कार्बनमय शेल के बीच एचपी (HP) के विट्रीनाइट प्रतिक्रिया में समानताएं, विट्रीनाइट टुकड़े के तापीय विकास को मुख्य रूप से अंतर्निहित दर-सीमित गतिज मापदंडों द्वारा नियंत्रित करती है। जबकि, स्तरीकृत युग, तलछटी वातावरण, आसपास की जैविक खनिज संरचना द्वारा पदार्थ, लिथोलॉजी और कटैलिसीस का प्रभाव कम होता है। भविष्य में हमारी समझ को और बेहतर बनाने के लिए विट्रीनाइट एरोमैटाइजेशन और काइनेटिक पैरामीटर, विट्रीनाइट रिफलेक्शन तापीय इवोल्यूशन के तापमान अध्ययन के साथ-साथ एक ही स्तरिकी (स्ट्रैटिग्राफिक) सेक्शन का कोयला और कार्बनमय शेल और मौजूदा लकड़ी के ऊतक एवं आधुनिक संवहनी पौधे शामिल होने चाहिए।

दिव्या के. मिश्रा, पॉल सी. हैकली, आरोन एम. जुब, मार्गरेट एम. सैंडर्स,
शैलेश अग्रवाल एवं अतुल के. वर्मा

पाँच करोड़ वर्ष पूर्व भारतीय प्लेट के इतिहास का एक अंश

पृथ्वी का इतिहास बहुत-ही रोचक है। पृथ्वी अपने गठन से लेकर आज तक, भू-मंडल विकास के एक लंबे दौर से गुजरी है। गर्म और गैसीय गोले नें धीरे-धीरे ठंडे होकर जमीन और पानी का निर्माण किया। भू-मंडल तीन प्रकार की शिलाओं से बने है: प्राथमतः आग्नेय शिला जो अपरदित और संचित होकर अवसादी शिला बनती है और ये बदलकर कायांतरित शिला में परिवर्तित हो जाती हैं। शिलाओं की उत्पत्ति हुई और उसके बाद ये शिलाएँ परतों दर परतों में इकट्ठी हुईं, और ये पृथ्वी की उत्पत्ति के इतिहास के पन्ने बन गईं। लगभग 2.8 करोड़ वर्ष पहले, ये भूभाग विशाल हो गए और दुनिया के सभी महाद्वीप एक साथ एक सुपरकॉन्टिनेंट के रूप में जुड़ गए, जिसे पैंजिया कहा जाता था। फिर यह महाद्वीप उत्तर की ओर बढ़ते लौरेशिया और दक्षिण की ओर बढ़ते गोंडवाना में विभाजित हो गया। जब ये भूभाग एक साथ थे तब उनमे कई पौधे उग रहे थे और विखंडित होने पर उनका अस्तित्व बना रहा। अक्षांशीय एवं देशान्तरीय स्थिति में परिवर्तन से इन महाद्वीपों में जीवधारियों की प्रकृति में परिवर्तन होने लगा। कुछ प्रजाति अपने आदिम रूप में बनी रहीं और जीवित रहीं। उनमें से कुछ काल कवलित और कुछ अन्य



अपने अस्तित्व की आवश्यकता को पूर्ण करने हेतु अनुकूलित और विकसित हुई। एशिया प्लेट के दक्षिण गोलार्ध से उत्तरी गोलार्ध में आज की स्थिति तक पहुँचने के लिए भारत को एक लंबा सफ़र तय करना पड़ा। इसने अपनी उत्तर दिशा की यात्रा काफी तेजी से शुरू की। हालाँकि, अपनी यात्रा के दौरान यह लगभग 10 करोड़ वर्षों तक एक द्वीपीय भू-खण्ड बना रहा। इस यात्रा ने मौजूदा जीवधारियों पर बहुत प्रभाव डाला। वनस्पति बदली, विकसित और अनुकूलित हुई और अंततः भारतीय प्लेट एशिया से टकराने एवं धरती में समाहित होने लगी। वनस्पति का एक दिलचस्प और परिवर्तनशील समूह का परस्पर विनिमय होने लगा। सबडक्शन ने दबाव और गर्मी में ढाल का काम किया जिसके परिणामस्वरूप लिग्नाइट का एक विशाल भंडार विशेष रूप से राजस्थान और गुजरात सहित भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में लगभग 5 करोड़ वर्ष पहले बना।

इन लिग्नाइट्स और उनसे जुड़े अवसाद के स्तर (शेल, क्ले आदि) पर शोध बहुत महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनके गठन का समय भारत-एशिया टकराव के समय के साथ मेल खाता है। यह अवधि जिसे पेलियोजीन कहते हैं, सीनोज़ोइक युग की तीन अवधियों में से सबसे पुरानी है (लगभग 5 करोड़ वर्ष) और जिसमे वैश्विक महत्व की कई घटनाएँ घटित हुई हैं जैसे कि PETM (पैलियोसीन-इओसीन थर्मल मैक्सिमा), EECO (प्रारंभिक इओसीन क्लाइमेट ऑप्टिमम) जहां वैश्विक तापमान में कुछ डिग्री (क्रमशः लगभग 8 डिग्री सेल्सियस और 6 डिग्री सेल्सियस) की वृद्ध हुई थी। इस प्रकार, वैश्विक परिप्रेक्ष्य में सहसंबंधों में और इसके साथ-साथ वर्तमान जलवायु जो कि तेजी से बदल रहा है जो बड़ी चिंता का विषय है, का विश्लेषण करने में मदद मिलेगी। साथ ही लिग्नाइट सबसे बड़ा प्राकृतिक संसाधन होने के साथ-साथ हाइड्रोकार्बन का संभावित स्रोत भी है। शोधकर्ताओं के लिए वर्तमान वनस्पति को सहसंबंधित करने के लिए पुरावनस्पति को समझना भी बहुत महत्वपूर्ण है।

हमारे शोध का अध्ययन क्षेत्र राजस्थान, पश्चिमी भारत की बरसिंगसर और जालिपा लिग्नाइट खदानें क्रमशः बीकानेर और बाड़मेर जिलों में स्थित हैं। शोध का प्रमुख उद्देश्य पुराजलवायु, स्रोत वनस्पति के साथ-साथ निक्षिप्त हाइड्रोकार्बन क्षमता को समझना है एवं लिग्नाइट की गुणवत्ता व प्रकृति तथा क्षेत्रीय और वैश्विक पहलू में अन्य लिग्नाइट के साथ तुलना भी इस अध्ययन का उद्देश्य है। बहु-विषयक पहलू वाला विज्ञान आज अति महत्वपूर्ण है क्योंकि गहन अध्ययन, तुलनात्मक डेटा, सहायक साक्ष्य विज्ञान या शोध को विश्वसनीय और तथ्यात्मक बनाते हैं। मात्र परिकल्पना और इसे एक उपकरण के साथ साबित करना अब बीती बात है। मशीनी अध्ययन के साथ-साथ अनुभवी पहचान के साथ परिष्कृत विश्लेषण सुविधाएं अच्छा निष्कर्ष और समझ प्रदान करती हैं। हम बायोमार्कर (बायो-जीओमार्कर) जैसे विभिन्न प्रॉक्सी का उपयोग कर रहे हैं जो मूलरूप से आणविक जीवाश्म अर्थात हाइड्रोकार्बन के रूप में बायोटा के कार्बनिक अवशेष हैं। नमूने घुलनशील हाइड्रोकार्बन (बिटुमेन) के लिए निकाले जाते हैं, फिर इन्हें एक विलायक और



एक स्थिर चरण का उपयोग करके कॉलम क्रोमैटोग्राफी की एक सरल प्रक्रिया के माध्यम से ध्रुवीय और गैर-ध्रुवीय भागों में अलग किया जाता है। तत्पश्चात गैस क्रोमैटोग्राफी-मास स्पेक्ट्रोमेट्री (जीसीएमएस) विश्लेषण किया जाता है जो हमें कुल आयन क्रोमैटोग्राम (टीआईसी) नामक एक स्पेक्ट्रम में सभी हाइड्रोकार्बन देता है। मूल सिद्धांत यह है कि आयन कितने हल्के या भारी होते हैं, इसके अनुसार अलग-अलग प्रतिधारण समय (रन टाइम) पर अलग हो जाते हैं। लिग्नाइट्स में मौजूद हाइड्रोकार्बन के विभिन्न पैरामीटर वनस्पति इनपुट (जैसे स्थलीय या जलीय) में परिवर्तन की पहचान करने में मदद करते हैं जो हमें जलवायु के प्रकार और गठन के दौरान विविधता बताते हैं। यह कार्बन के स्थिर समस्थानिकों के अनुपात, जलवायु के विभिन्न क्षेत्रों में उगने वाले विभिन्न प्रकार के पौधों के लिए भिन्न होते हैं और इसलिए पुरा-जलवायु और वनस्पति को समझने में मदद करते हैं। टेरपेनॉइड बायोमार्कर का एक महत्वपूर्ण वर्ग है। ये मूलतः जड़ और प्ररोह प्रणाली वाले पौधों में होते हैं। इसके अलावा, टेरपेनॉइड रचना हमें बताती है कि क्या उच्च पौधे में जिम्नोस्पर्म या एंजियोस्पर्म प्रमुख थे। जिम्नोस्पर्म में डाइटरपेनॉइडस बहुत आम हैं, इसलिए एक विशेष क्षेत्र में इसकी बहुतायत जिम्नोस्पर्म पौधों की अपेक्षाकृत उच्च बहुतायत का संकेत देती है। हमारे शोधकार्य में बहुत ही रोचक डेटा और यौगिक की पहचान की गई जो कुछ वंशावलीय संकेत भी दे सकती है। प्रचुरता का एक तुलनात्मक अध्ययन भी हमें अध्ययन क्षेत्र में तात्कालिक प्रकार के पौधों के प्रभुत्व की पहचान करने में मदद कर सकता है।

लिग्नाइट्स से बने कार्बनिक पदार्थ की प्रकृति की पहचान करने हेतु हम माइक्रोस्कोप का भी उपयोग करते हैं। कोयला या लिग्नाइट बनाने वाली प्रत्येक इकाई को मैसेरल कहा जाता है। इन मैसेरल को विभिन्न प्रकारों में बांटा जा सकता है। यह हमें निक्षेपण की स्थिति के बारे में बहुत कुछ जानने में मदद कर सकती है। ये पेट्रोग्राफिक डेटा परिपक्वता, संरक्षण गुणवत्ता के साथ-साथ खनिज पदार्थ जो मौजूद हो सकते हैं की पहचान करने में मदद करते हैं। उदाहरण के लिए नमूनों में पाइराइट उन्हें अधिक समुद्री या तटीय क्षेत्र से जोड़ते है। इसके साथ ही इन खानों के संस्तरों का तुलनात्मक अध्ययन अभी भी स्थापित किया जाना है जोकि प्रमुख उद्देश्यों में से एक है।

रिम्पी चेतिया एवं रून्सी पॉ. मेथ्युस



तकनीकी लेख

उष्णकटिबंधीय वन पारिस्थितिकी तंत्र में प्राथमिकता संरक्षण क्षेत्रों (पीसीए) की भविष्यवाणी हेतु प्रजाति वितरण मॉडल

वैश्विक मानवजनित पर्यावरण परिवर्तन ने पिछले तीन दशकों में प्रजातियों की विविधता, वितरण और निरंतरता पर गंभीर प्रभाव डाला है, जो बदले में प्रजातियों के नुकसान का एक प्रमुख कारण होगा। उष्णकटिबंधीय बायोम चार विश्वव्यापी जलवायु डोमेन (उष्णकटिबंधीय, उपोष्णकटिबंधीय, समशीतोष्ण एवं बोरियल) में से एक है, जो अधिकतम वन अभाव और अति-शोषण से गुजरता है। दक्षिणी और उत्तरी महाद्वीपीय दक्षिण पूर्व एशिया में मानसून से प्रभावित जलवायु सक्रिय होती है, जिसमें हवा प्रणाली में व्यापक मौसमी उलटफेर और गर्मियों में होने वाली वर्षा शामिल है। जलवायु परिवर्तन इन क्षेत्रों में बढ़ते तापमान और बदलते वर्षा स्वरूप के लिए मुख्य ड्राइविंग विशेषता है। पिछले 100 वर्षों में, भू-मंडलीय तपन और भूमि उपयोग परिवर्तनों ने स्पाटियो-टेम्पोरल पर्यावरण पैटर्न में पर्याप्त भिन्नता पैदा की है, और ये परिवर्तन आवास की कमी और पौधों की प्रजातियों की संरचना में परिवर्तन के कारण वन पारिस्थितिकी तंत्र में, जैव विविधता और संरक्षण के लिए एक बड़ा खतरा पैदा करते हैं। दुनिया में पौधों की प्रजातियों का एक बड़ा हिस्सा उष्णकटिबंधीय जंगलों से है जो पृथ्वी की सतह के केवल 7% हिस्से को कवर करते हैं। इन उष्णकटिबंधीय वनों को मानवजनित गतिविधियों ने नष्ट कर दिया गया है, जिससे लगभग 85% वृक्षों की प्रजातियों को नष्ट करने वाले वनों का क्षरण हुआ है। मानव गतिविधियों के कारण प्रजातियों के नुकसान की दर प्राकृतिक गड़बड़ी की तुलना में 3-8 गुना अधिक है, जिससे निवास स्थान में परिवर्तन होता है।

कई भू-सांख्यिकीय उपकरण और मॉडलिंग दृष्टिकोण, उदाहरण के लिए, कार्टोग्राफिक मॉडल, डौप और CLIMEX, ऑटोरेग्रेसिव और क्लासिकल लॉजिस्टिक रिग्रेशन (LR) तरीके का हाल ही में उपयोग किया गया है। पौधों की प्रजातियों के वितरण, प्रजाति विविधता पैटर्न और जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को मॉडल करने के लिए कई जांचकर्ताओं ने उष्णकटिबंधीय वनों का अध्ययन किया है, लेकिन कुछ अध्ययनों ने उन्नत भू-स्थानिक दृष्टिकोण और उपकरणों को नियोजित किया है। प्रजातियों के वितरण पर मानवजनित जलवायु परिवर्तन के संभावित प्रभाव का सटीक ढंग से आकलन प्रजातियों के वितरण मॉडल (एसडीएम) के माध्यम से किया जा सकता है, वर्तमान जलवायु परिस्थितियों और पौधों की प्रजातियों के वास्तविक आला को मॉडल करने के लिए प्रजातियों की उपस्थिति के आंकड़ों का उपयोग किया जाता है। इन वितरण मॉडलों को अतीत और भविष्य के जलवायु पैटर्न के अनुमानों का उपयोग करके भौगोलिक स्थान



में आगे प्रक्षेपित किया जाता है। जलवायु परिवर्तन कैसे प्रभावित होते हैं और पौधों की प्रजातियों के वितरण को वर्तमान एवं भविष्य में कैसे प्रभावित करेंगे? इस प्रश्न के उत्तर हेतु बायोग्राफी का अध्ययन करने और वर्तमान घटना की जानकारी के साथ अनुमानित पारिस्थितिक मापदंडों का उपयोग करके विभिन्न समय अवधि (पिछले और भावी परिदृश्य) हेतु संभावित वितरण के मूल्यांकन के माध्यम से संरक्षण रणनीतियों को विकसित करना आवश्यक है। मैक्सेंट एसडीएम एक बायोक्लिमैटिक मॉडल है जो केवल उपस्थित डेटा का उपयोग करता है, यह पता चलता है कि अनुपस्थित डेटा शायद ही पाया जाता है या सुसंगत है और जलवायु नियंत्रण के आधार पर प्रजातियों के वितरण का मूल्यांकन करता है, और विभिन्न मॉडलिंग दृष्टिकोणों के बीच अच्छा प्रदर्शन करता है। पौधों की प्रजातियों के सर्वोत्तम उपयुक्त वितरण का पता लगाने हेतु यह मॉडल प्रजातियों की उपस्थिति अभिलेखित और वर्तमान जलवायु चर (variables) का उपयोग करता है, जैसे वर्षा, तापमान और ऊंचाई। लक्षित प्रजातियों के लिए पिछले मॉडल प्रक्षेपण को विभिन्न पुरावनस्पति पुनर्निर्माण अध्ययनों से प्रजातियों के जीवाश्म पराग साक्ष्य द्वारा क्रॉस मान्य किया जा सकता है। इसमें पुरापारिस्थितिकी और प्रजाति वितरण मॉडलिंग के बीच अंतराल को पुरा-परोक्षी विश्लेषण को एकीकृत करके जोड़ने की काफी क्षमता है जो जलवायु मॉडलिंग के साथ अंतिम हिमनद अधिकतम (LGM) और मध्य होलोसीन (Mid-Holocene) जैसे लंबे समय काल को विस्तीर्ण करता है जो सीमा संकुचन/विस्तार और प्रवासन के लिए स्थानिक संदर्भ को उजागर करता है।

इन अध्ययनों के निष्कर्ष गैर-अनुकूल आवासों और संभावित जलवायु अनुकूल क्षेत्रों को पहचान कर भारत में प्रमुख प्रजातियों के लिए एक संरक्षण दृष्टिकोण स्थापित करने में सहायक हो सकते हैं जहां वन कायाकल्प के लिए बहाली रणनीतियों को लागू किया जा सकता है। भारत के कई क्षेत्रों में स्थानीय आबादी की आजीविका हेतु ऐसी प्रमुख वनस्पति की प्रजातियों पर उनकी प्रमुख निर्भरता है, इसलिए उन्हें विभिन्न पौधों के उत्पादों के संग्रह के लिए सही तकनीकों के साथ शिक्षित करने की भी आवश्यकता है। जलवायु परिवर्तन के प्रभाव का मूल्यांकन, ऐसी प्रजातियों के वितरण को विश्लेषित करता है जो पारिस्थितिक और आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हैं तथा देश के लिए वन कार्बन प्रबंधन रणनीतियों में भी मदद करते हैं।

ज्योति श्रीवास्तव



सेडिमेंट एंड मेंबर मॉडलिंग एनालिसिस (ईएमएमए) पर तकनीकी नोट और पुराजलवायु पुनर्निर्माण में इसकी व्याख्या

तलछटी (अवसाद) अभिलेखागार (जैसे- झीलों, नदियों और गहरे समुद्र में जमा अवसाद) जमाव पैटर्न, स्रोत और पुराजलवायु परिवर्तन जैसी महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान कर सकते हैं। निक्षेपण प्रणालियों में जमा अवसाद उनके गठन के बाद से होने वाले स्थानीय और क्षेत्रीय जलवायु परिवर्तनों के संकेतों को स्पष्टता से संरक्षित रखते हैं (बिर्क्स और बिर्क्स, 2006)। अवसाद के कण विभिन्न अपवाहित प्रक्रियाओं (अर्थात्, नदीय, एओलियन और हिमनद) से कई स्रोतों से एक निक्षेपण द्रोणी (बेसिन) तक पहुंचते हैं और ये प्रक्रियाएं स्थानीय भू-विज्ञान, भू-आकृति विज्ञान, भू-जल विज्ञान, जल निकासी, वनस्पति, मिट्टी के प्रकार, भूमि उपयोग/भूमि कवर, बेसिन और जलग्रहण क्षेत्र में जलवायु की स्थिति के द्वारा नियंत्रित होती हैं (फोलक और वार्ड, 1957; स्टुट एट अल, 2002; वॉकर एट अल, 2018)। अपवाहन और निक्षेपण के दौरान, विभिन्न तलछट आकार वर्गों (जैसे, रेत, गाद और मिट्टी) को विविध अपवाहन माध्यमों (जैसे, वर्षा जल, पिघला हुआ पानी, द्रव्यमान-प्रवाह, धाराएं, हवा) से अलग-अलग अनुपात में क्रमबद्ध और मिश्रित किया जाता है जो विशेष तलछट के आकार के वितरण की उत्पत्ति करता है। तलछट के दाने के आकार माप में भिन्नता व्यापक रूप से तलछटी परिवर्तनों का वर्णन कर सकती हैं और विशेष मापों वाले बल्क (bulk) तलछट आकार वितरण के उपयोग द्वारा संभावित स्रोत परिवर्तनों के बीच भेदभाव कर सकते हैं (यानी, अवसाद गठन बहुतायत या औसत तलछट आकार, डी50, डी90, छँटाई, तिरछापन और कर्टोसिस) (फोलक और वार्ड, 1957)। हालांकि, व्यापक पैमाने पर उपयोग किए जाने वाले ये विशेष माप अवसाद के बहु-मॉडल प्राकृतिक तलछट के आकार के वितरण का वर्णन करने में अक्षम हैं और केवल तलछटी प्रक्रियाओं के गुणात्मक मूल्यांकन की अनुमति देते हैं जो अवसाद गठन में योगदान करते हैं (डाइट्ज़ और डाइट्ज़, 2019)। साथ ही, जमाव के दौरान या बाद में (उदाहरण के लिए, बायोटर्बेशन और रासायनिक परिवर्तन के कारण) या यहां तक कि पानी के स्तंभ में अवसाद के आकार की विस्तृत श्रृंखला के चर (variable) मिश्रण, एवं तलछट स्तंभ से नमूनाकरण के कारण औसत तलछट आकार के रिकॉर्ड को सम्मिलित करते समय प्रक्रिया से संबंधित संकेत खो जाते हैं (डाइट्ज़ एट अल, 2014)। इन सीमाओं को मल्टी-मोडल ग्रेन-साइज़ डिस्ट्रीब्यूशन को विघटित करके और एंड मेंबर मॉडलिंग एनालिसिस (ईएमएमए; वेल्त्जे, 1997; डाइट्ज़ एट अल, 2012) के साथ प्रमुख ग्रेन-साइज़ उप-जनसंख्या को निर्धारित करके दूर किया जाता है ताकि प्रक्रिया की व्याख्या और संबद्ध संचालकों के अभिनिधरिण में सुधार हो सके। तलछट छँटाई प्राकृतिक दाने के आकार के वितरण गतिशील उप-जनसंख्या (ईएम) से बने होते हैं जिन्हें विभिन्न अवसाद



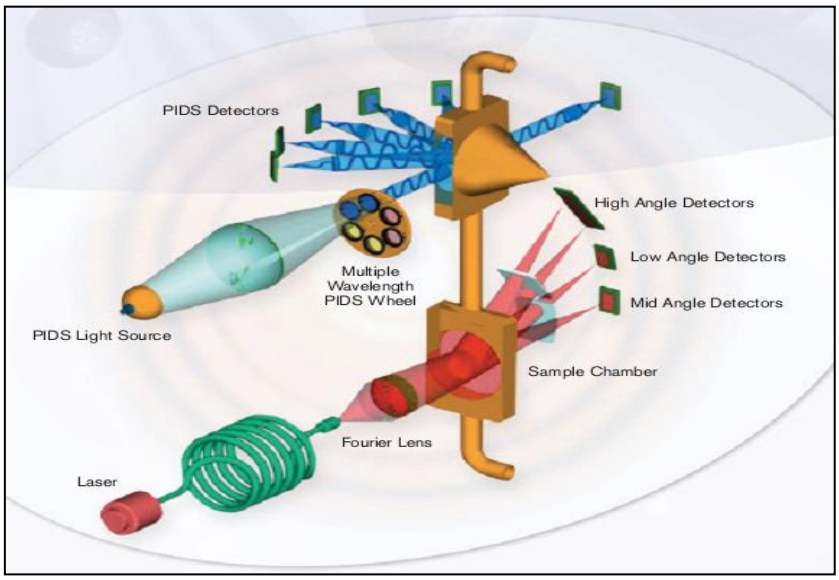
अपवाहन और निक्षेपण प्रक्रियाओं द्वारा क्रमबद्ध किया गया था (वेल्टजे और प्रिन्स, 2007)। ईएमएमए का आविर्भाव रूप से शक्तिशाली विश्लेषणात्मक उपकरण के रूप में उभर रहा है जो भू-वैज्ञानिक रूप से सार्थक ईएम में तलछट के आकार के डेटा के सांख्यिकीय अपघटन को सक्षम बनाता है और अवसादन रचना, अपवाहन और जमाव पर विस्तृत और मात्रात्मक जानकारी प्रदान करता है, इसके अलावा, यह ईएम के एट्रिब्यूशन से लेकर जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील होने वाली विशिष्ट निक्षेपण प्रक्रियाओं तक जलवायु संकेतों को डिकोड करने में मदद करता है (बेशर एट अल, 2017), जो कि कोई अन्य तलछट आकार माप प्रदान नहीं कर सकता है।

तरीका

नमूना प्रसंस्करण और तलछट का विश्लेषण: मॉडलिंग स्थलीय घाटियों या समुद्र में क्रूज अभियानों पर क्षेत्र भ्रमण के दौरान एकत्रित अवसाद नमूनों के दाने के वितरण के विश्लेषण के साथ शुरू होता है। एकत्रित तलछट नमूनों को तलछट के आकार के वितरण डेटा (जीएसडी) का उत्पादन करने के लिए प्रयोगशाला में संसाधित और विश्लेषित किया जाता है, यह डेटा मैट्रिक्स एल्गोरिथम मॉडल में प्रयोग होता है। दानेदार विश्लेषण के लिए, अवसाद के नमूनों को क्रमशः कार्बोनेट और कार्बनिक कार्बन को हटाने के लिए 10% हाइड्रोक्लोरिक एसिड और 30% हाइड्रोजन पेरोक्साइड के साथ संसाधित किया जाता है (बत्तरबीट एट अल., 2001; शूमाकर, 2002; वैस्मा, 2008 में उल्लिखित प्रक्रियाओं के संदर्भ में)। यह प्रक्रिया सुनिश्चित करती है कि विशिष्ट चट्टान, मिट्टी और पुराने तलछट मूल के कणों को ही आकार के लिए मापा जा रहा है, न कि बायोजेनिक/रासायनिक अवक्षेपकों को। रासायनिक उपचार के दौरान एकत्रीकरण से बचने के लिए, माप के दौरान तलछट कणों के फैलाव हेतु सोडियम हेक्सामेटाफ़ॉस्फेट के 1% मिश्रण का भी उपयोग किया जाता है (मरे, 2002; आंद्रेओला एट अल., 2004)। रासायनिक रूप से उपचारित तलछट के नमूनों को लेज़र पार्टिकल साइज़ एनालाइज़र (बेकमैन कल्टर LS™ 13 320) में डाला जाता है ताकि तलछट के आकार के वितरण (चर तलछट के आकार की प्रजातियों की आंशिक बहुतायत यानी 0.03 से 2000 µm तक) को मापा जा सके।



चित्र 1. बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ में एलडीपीएसए प्रणाली (बेकमैन कल्टर एलएस™ 13 320)



चित्र 2. एलडीपीएसए के विभिन्न घटक

एलडीपीएसए में आकार माप उपकरण स्वचालित होते हैं जो नमूनों में विद्यमान स्वाभाविक रूप से होने वाले तलछट के आकार को मापते हैं तथा विवर्तित लेजर बीम की तीव्रता और कोणों पर आधारित होता है जो उपकरण के अंदर अवसाद और पानी से भरे नमूना कक्ष के माध्यम से पारित किया जाता है। महीन अवसाद के अंश में मोटे तलछट की तुलना में विवर्तन का कोण अधिक होता है। डिटेक्टिव लेन्सों की एक श्रृंखला विवर्तित लेसर प्रकीर्णन को ग्रहण करती है और बीम के विवर्तन की तीव्रता और अंश को संसाधित करती है जिसे फिर मशीन द्वारा संसाधित किया जाता है ताकि आउटपुट इंटरफ़ेस (कंप्यूटर) पर नमूनों में उपलब्ध तलछट के आकार की प्रजातियों का आउटपुट दिया जा सके। एलडीपीएसए मैट्रिक्स के रूप में एक आउटपुट फाइल देता है (नीचे दी गई तालिका



देखें) जिनमें कॉलम की 'म' संख्या (नमूनों की) और पंक्तियों की 'न' संख्या (एक नमूने में तलछट के आकार की कक्षाओं और उनकी आंशिक मात्रा प्रतिशत) शामिल होती हैं।

एंड मेंबर मॉडलिंग विश्लेषण (ईएमएमए):

प्राकृतिक अवसादों के दाने के आकार का स्पेक्ट्रम विभिन्न गतिशील उप-आबादी (sub-population) से बना है। ईएमएमए गणितीय रूप से ईएम लोडिंग कहे जाने वाले तलछट के आकार की उप-आबादी को हल करता है और एक नमूने में इसकी बहुतायत को निर्धारित करता है (जिसे ईएम स्कोर कहा जाता है)। मैट्रिक्स के रूप में एलडीपीएसए से प्राप्त तलछट के आकार का कंपोजीशनल डेटा (जीएसडी) कंप्यूटर में एंड मेम्बर विश्लेषण तैयार करने के लिए गणितीय रूप से संसाधित किया जाता है। कंप्यूटर अनुप्रयोगों में विभिन्न प्रोग्रामिंग भाषाओं में अलग-अलग एल्गोरिथम उपलब्ध हैं जैसे MATLAB, R, और विंडो कमांड प्रॉम्प्ट तलछट EMs को हल करने के लिए गणितीय सिद्धांत की एक विस्तृत विविधता का उपयोग करते हुए GSD को सार्थक EMs में मॉडल करते हैं। इस विशेष उदाहरण के लिए, R सॉफ़्टवेयर वातावरण में ईएम अपघटन की पृष्ठभूमि के गणितीय सिद्धांतों पर चर्चा की गई है।

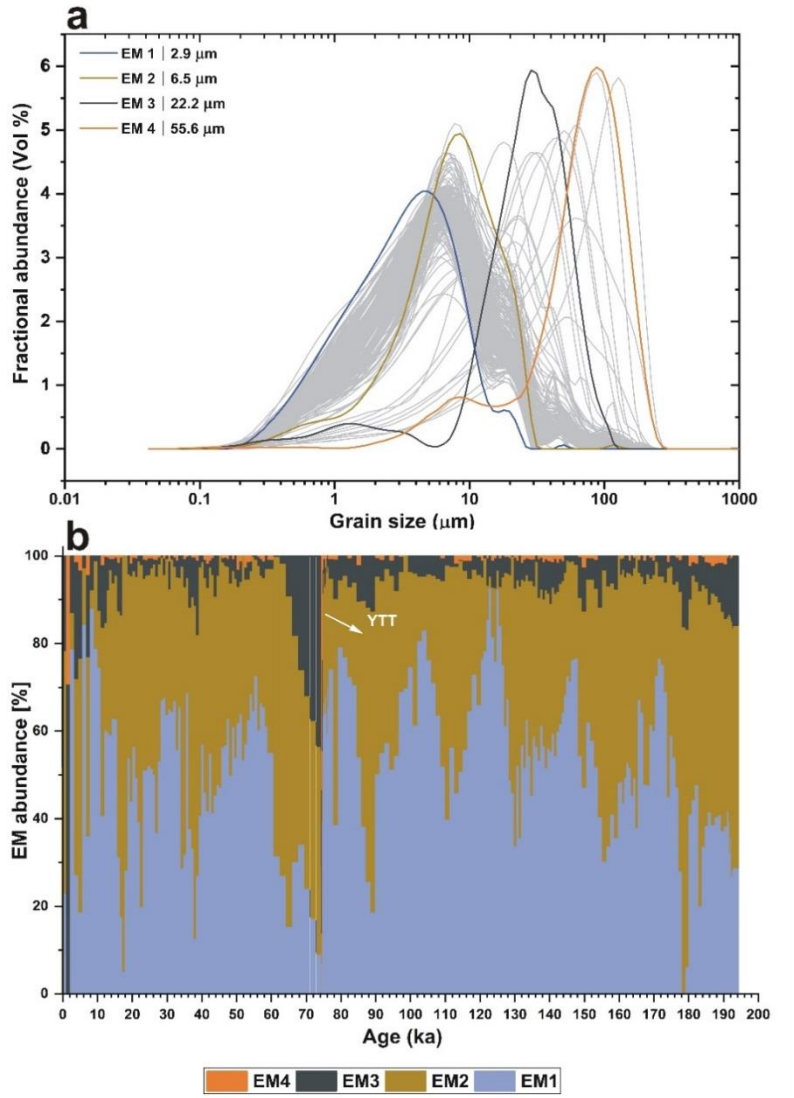
डाइट्ज़ एट अल., 2019 के नॉन-पैरामीट्रिक एंड-मेंबर मॉडलिंग एनालिसिस (ईएमएमए) एल्गोरिथम का उद्देश्य ऐगेन स्पेस विश्लेषण और संरचनागत डेटा बाधाओं (एचिसन, 1986) के आधार पर असतत उप-जनसंख्या के संयोजन के रूप में एक संपूर्ण डेटा सेट (जीएसडी) का वर्णन करना है। एक बहुआयामी ग्रेन-साइज़ डेटा सेट X (यानी m नमूने, प्रत्येक को n ग्रेन-साइज़ क्लासेस द्वारा दर्शाया गया है) को ट्रांसपोज़्ड एंड-मेंबर लोडिंग (V^T, इन्डविजूअल ग्रेन-साइज़ उप-जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाले), एंड-मेंबर स्कोर (एम, प्रत्येक नमूने के अंत-सदस्य उप-जनसंख्या का सापेक्ष योगदान) एवं त्रुटि (error) मैट्रिक्स ई के रैखिक संयोजन के रूप में इस फ़ंक्शन के द्वारा वर्णित किया जा सकता है:

$$X = M \cdot V^T + E \qquad \text{....(1)}$$

इसलिए, ईएम लोडिंग और ईएम स्कोर की मदद से मिश्रित तलछट आकार के डेटा सेट से अपवाहन और निक्षेपण की क्षमता को निर्धारित करना संभव है। ईएमएमए को व्यापक रूप से विभिन्न तलछट अभिलेखागार से अतीत की तलछटी प्रक्रियाओं की व्याख्या और मात्रा निर्धारित करने के लिए लागू किया गया है, उदाहरणार्थ समुद्री, सरोवर, एओलियन, फ़्लूवियल, जलोढ़ और पेरिग्लेशियल वातावरण में, विभिन्न लौकिक और स्थानिक पैमानों पर।

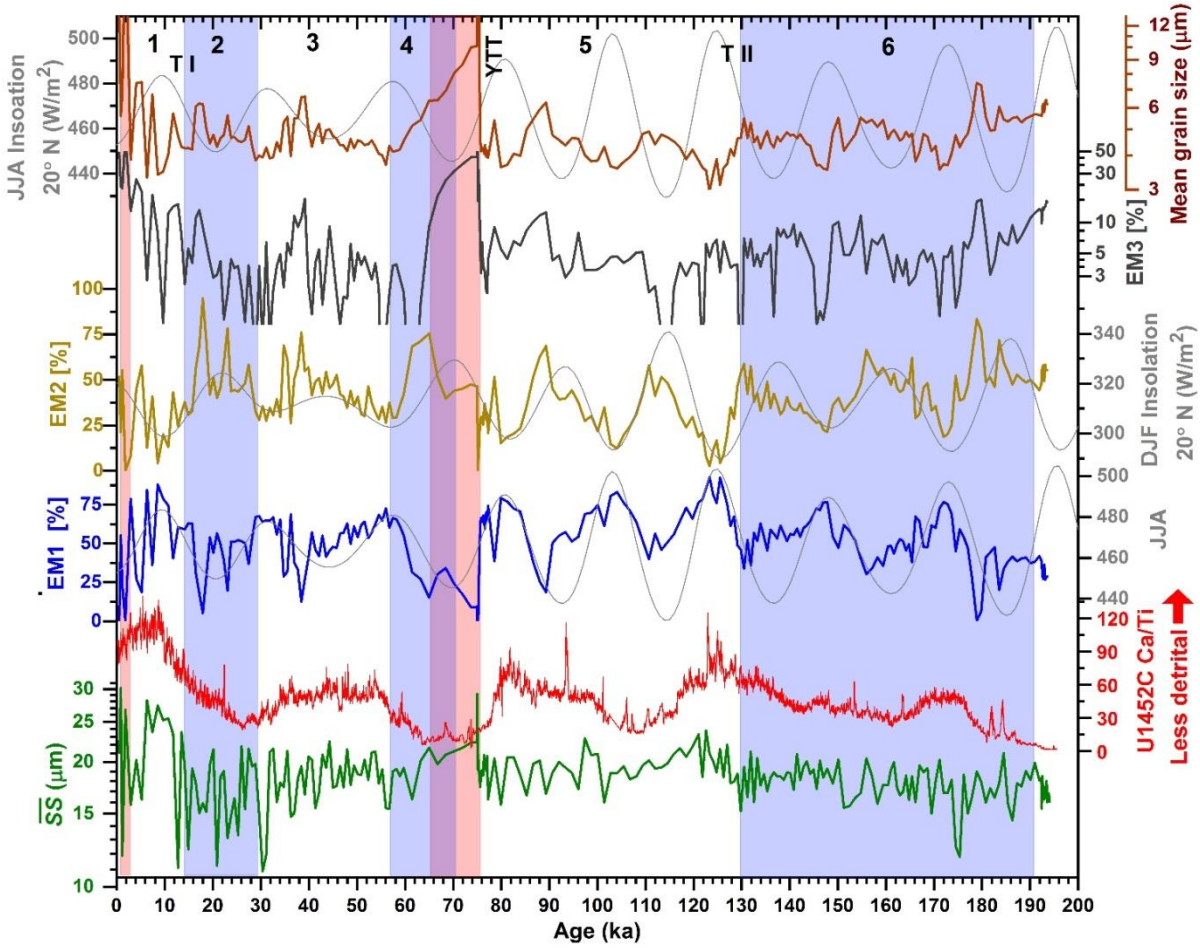
तलछटी और पुराजलवायु पुनर्रचना में ईएमएमए का अनुप्रयोग:

ईएमएमए मॉडल के प्रदर्शन का मूल्यांकन करने के लिए ईएम लोडिंग, ईएम स्कोर और कुछ पैरामीटर सहित कई मॉडल पैरामीटर लौटाता है। सभी मापदंडों के बीच, ईएम लोडिंग और ईएम स्कोर तलछटी पुनर्निर्माण के संदर्भ में सबसे उपयोगी हैं। व्यक्तिगत ईएम लोडिंग कुछ तलछटी प्रक्रिया से जुड़े होते हैं जो उस विशेष ईएम के अपवाहन और निक्षेपण हेतु उत्तरदायी होते हैं। एक ईएम स्कोर प्रदर्शित करता है कि कौन-सी विशेष प्रक्रिया लौकिक और स्थानिक मापनों में अन्य की तुलना में अवसादन में प्रमुख भूमिका निभा रही है। इस प्रकार, ईएम लोडिंग और उनके स्कोर पर संयुक्त जानकारी प्रभावी रूप से तलछटी प्रक्रियाओं की पुनर्रचना करती है जो अंततः क्षेत्र में पुराजलवायवी (पेलियोक्लाइमैटिक) स्थिति से संबंधित होती हैं।



चित्र 3. बंगाल की खाड़ी से गहरे समुद्री तलछट का EM अपघटन; शीर्ष- ईएम लोडिंग; नीचे- तलछट की आयु के साथ प्लॉट किए गए EM स्कोर

उदाहरणार्थ, एक ईएमएमए ने गहरे समुद्र के कोर के तलछट के नमूनों के लिए 4 विशिष्ट ईएम लोडिंग का मॉडल तैयार किया, जो बंगाल की खाड़ी में पुराजलवायु और पुरापाषाणकालीन परिवर्तनों के 200000 वर्ष के रिकॉर्ड का दस्तावेजीकरण करता है। एक EM मिट्टी के डोमेन में है (EM1, माध्य आकार ~ 3 µm) और शेष तीन महीन गाद (EM2, माध्य आकार 6.5 µm), मध्यम गाद (EM3 माध्य आकार 22.2 µm) और मोटे गाद डोमेन (EM4 माध्य आकार) में हैं 55.6 µm) क्रमशः (चित्र 3)। EM1 और EM2 के सापेक्ष बहुतायत EMs (EM स्कोर, EM%) पिछले 2000000 वर्षों के दौरान चक्रीय भिन्नता दिखाते हैं, जबकि, EM3 और EM4 की प्रचुरता अचक्रीय और अल्प है (चित्र 3)। EM1 सबसे प्रभावी (~50%) है तादोपरांत EM2 (~40%), EM3 (~8%) और EM4 (~2%) आते हैं।



चित्र 4. तलछट की आयु सहित आरेखित ईएम स्कोर। ईएम रिकॉर्ड की तुलना बाहरी बल के साथ की जाती है, उदाहरण के लिए, 20^0 N अक्षांश पर गर्मी और सर्दियों के आतपन (सूर्यताप) में भिन्नता

20^0 N अक्षांश पर सौर सूर्यातप जैसे बाहरी बल कारकों के साथ EM बहुतायत की तुलना से संकेत मिलता है कि EM1 का जमाव जो कि मिट्टी के आकार का अवसाद



है, गर्मी के महीनों (जून, जुलाई और अगस्त) के दौरान सूर्यातप द्वारा नियंत्रित होता है, और इसका संबंध गर्मियों में होने वाली वर्षा से है जो सतही अपवाह और बीओबी में नदी के निर्वहन में वृद्धि करती है, और बंगाल फैन एवं उसके पार निलंबन में मिट्टी के आकार के अवसादों को प्राप्त करती है। इस प्रकार बंगाल फैन के तलछट रिकॉर्ड में EM1 प्रचुरता की परिवर्तनशीलता पिछले 2000000 के दौरान ग्रीष्मकालीन मानसून वर्षा की तीव्रता का प्रलेखीकरण करती है। दूसरी ओर, EM2 की प्रचुरता जो गाद के आकार के अवसाद के कण हैं, सर्दियों (दिसंबर, जनवरी और फरवरी) के सूर्यातप के अनुसार बदलती रहती है, और यह सुझाव देती है कि यह भारत की मुख्य भूमि से उड़ने वाली हवा के इनपुट का घटक है जो कि शीतकालीन मानसून के दौरान चलने वाली तीव्र उत्तर-पूर्वी हवा से जुड़ी हुई है। EM3 और EM4 जो मध्यम से मोटे गाद के आकार के अवसाद अंश हैं, मैलापन घटक का प्रतिनिधित्व करते हैं जो प्रमुख नदी प्रणालियों द्वारा BoB में बड़े पैमाने पर अवसाद के प्रसार के माध्यम से BoB तक पहुँचाया जाता है। EM4, विशेष रूप से ज्वालामुखीय राख की परत की घटना से जुड़ा है और इसका स्कोर वर्णन करता है कि कब और कैसे इस अवसाद ने कोर साइट में अपना मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार, विघटित EM रिकॉर्ड तलछटी/जलवायु कारकों को विघटित करने और अवसादी गठन, अपवाहन और निक्षेपण से जुड़ी प्रक्रियाओं की सटीक पहचान करने के लिए एक प्रभावी उपकरण साबित होते हैं। EMMA अवसादन इतिहास के पूर्ण अपघटन को प्रस्तुत करने हेतु एक प्रभावी उपकरण के रूप में उभर रहा है और यह एक ज्वलंत तस्वीर प्रदान कर सकता है कि कौन सी प्रक्रियाएँ किस तलछटी तंत्र में अवसादन को नियंत्रित कर रही हैं। इस प्रकार EM की लौकिक योग्यता को प्रभावी रूप से विभिन्न लौकिक और स्थानिक मापकों में पुराजलवायु संबंधी निष्कर्ष निकालने हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है।

मसूद कवसर एवं मनोज एम.सी.



कविताएँ

हर मुश्किल एक दिन हल होगी

आज नहीं तो कल होगी, हर मुश्किल एक दिन हल होगी,
तुम पर हसने वालों की, उतरी हुई शक्ल होगी,
आज नहीं तो कल होगी, हर मुश्किल एक दिन हल होगी.....
जो सारे जग का कर्ता है, जो सबकी रचना करता है,
संसार की इस भीड़ में, उसको भी तेरी खबर होगी,
आज नहीं तो कल होगी, हर मुश्किल एक दिन हल होगी.....
पतझड़ के दिन भी कट जाएंगे, कोपल नवीन फिर आएंगे,
समय की बगिया में, फिर से भौरों की गुंजन होगी,
आज नहीं तो कल होगी, हर मुश्किल एक दिन हल होगी.....
जीवन के कर्तव्य पथ पर, परीक्षा सबकी होगी,
हार जीत की नौका से, नइयां पार भी एक दिन होगी,
आज नहीं तो कल होगी, हर मुश्किल एक दिन हल होगी.....
आंधी, तूफान से डगर तेरी, किनचित भी न विचलित होगी,
रात्री के अंधेरों से होकर, कल फिर से नई सुबह होगी,
आज नहीं तो कल होगी, हर मुश्किल एक दिन हल होगी.....

अमित कुमार मिश्रा

प्रयास का दिया

परेशानियों को पराजय अपनी,
मत बनने देना।
दृढ़ संकल्प और प्रयास के दिये को
उजालों में भी निरंतर जलने देना।



माना चका चौंध रोशनी में
उजाला दीये का नज़र नहीं आता है।
और कई बार प्रश्नचिह्न
उसके अस्तित्व पर लग जाता है।

दीये की इस लौ को
तीव्र तुम्हें रखना होगा।
झंझावातों तूफानों में
आगे इसको जलना होगा।

तेज लौ के दिये में
तपन भी तीव्र रखना होगा।
विपरीत हवा, हर हाथ से
थोड़ा सही पर लड़ना होगा।

याद रहे, बरसातों और तूफानों में,
मध्यम सही पर टिमटिमाए ये दीया
तिमिर जब घनघोर होगा।
उसे चीर देगा यही दीया।

उजालों का प्रतीक दीया, क्यों
उजालों से घबराता है,
परिणामों की सूली पर क्यों,
प्रयासों को चढ़ाता है।

ज्योतिपुंज दीप्त दीये को।
तुम्हें प्रज्ज्वलित सदा ही रखना है।
हर अँधरे उजाले में दीये का
अस्तित्व बचाए रखना है।

संध्या मिश्रा



रिश्ते

रिश्ते हैं अनमोल,
बोलो मीठे-मीठे बोल।

इंसानियत का पाठ पढाओ,
एक दूजे का साथ निभाओ।
दीन दुखियों के दर्द मिटाओ,
अपने गैर सबको अपनाओ।।

मां बाप का रिश्ता प्यारा,
उनसे जन्म हुआ हमारा।
कुर्बान किया उन्होंने जीवन सारा,
खुद मिटकर हमारा जीवन संवारा।।

आओ हम अपना फर्ज निभाएं,
मात-पिता का कर्ज चुकाएं।
उनका कभी न दिल दुखाएं,
मिलेंगी हमें लाख दुआएं।।

संस्कारों को तुम अपनाओ,
रिश्तों का तुम मान बढ़ाओ।
बुढ़ापे की लाठी बन जाओ,
वृद्धा आश्रम को हटाओ।।

भाई-बहन का रिश्ता प्यारा,
भाई होता सबसे दुलारा।
बहन लुटाती प्यार ढेर सारा,
दोनों बनते एक दूजे का सहारा।।

बच्चों की है बात निराली,
महकती इनसे घर की फुलवारी।
बसती इनमें जान हमारी,
सारी दुनिया इन पे वारी।।

दादा-दादी हैं घर की शान,
करो इनका सदैव सम्मान।
मिलती इनसे हमको पहचान,
ये छिड़कते हैं हम पर जान।।

बरसेगा जब स्नेह का सागर,
जीवन हो जायेगा सुंदर गागर।
रिश्तों को लाड़-प्यार से पालो,
करो न इनमें तोल-मोल।।

रिश्ते हैं अनमोल,
बोलो मीठे-मीठे बोल।

वाई . पी . सिंह



जीवन और संघर्ष

तू जिंदगी को जी-भर के जी,
उसे समझने की कोशिश न कर।

सुंदर सपनों के ताने-बाने बुन,
हर किसी से सीख एक नया गुण।।

मन में चल रहे युद्ध को विराम दे।
खुद को हर रोज़ एक नई पहचान दे।।

जो आज है, वो शायद ही कल होगा।
हर रात के बाद सवेरा भी होगा।।

जो भाग्य मे है, वो भाग कर आएगा।
तू धर्म, सत्य न्याय पर चलने वाला अभेद्य कहलाएगा।।

तू सच्चा है तो भी झुठलाया जाएगा।
अदृढ़ रहा तो ईश्वर से सराहा जाएगा।।

तू अपनी खुशियाँ ढूँढ़, खिलाफ तो बहुत हैं तेरे,
बस जितने साथ है सहारा उतना ही काफी होगा।।

न किसी से बैर कर, न स्वार्थ का हित जोड़ तू।
लोग ऐसे बहुत हैं यहाँ, एक नए रास्ते का रुख मोड़ तू।।

आर्या पाण्डेय



ये कर्म नहीं निश्फल होगा

एक कश्ती और....
एक फौलादी मन लेकर
तू चल समंदर घर करने
हर डर को पीछे छोड़-तोड़
तू चल लहरों से रण करने
देख के तेरा प्रण-वचन
अरे-तूफां भी दम साधेगा।
सही सलामत तेरी कश्ती को
वो खुद तुझे पार उतारेगा।
कुछ खोया है आगर तूने
तो पाने को है खड़ा हिमालय
तेरा कर्म ही तेरा कल होगा।
मान मेरे साथी तू सफल होगा
ये कर्म, नहीं निश्फल होगा।
ये कर्म नहीं निश्फल होगा।।

पार्थ रंजन एवं आर्या पाण्डेय

नारी आज की नारी

एक नारी सब पर भारी
अब नहीं हूँ मैं अबला
अब नहीं हूँ मैं बेचारी
एक नारी सब पर भारी।

मेरी एक पहचान है
मेरा अपना स्वाभिमान है
मेरा अपना एक ईमान है
मेरा अपना एक मान-सम्मान है
मुझे नारी होने पर अभिमान है
ये मेरी पहचान है।



नारी प्यार है और
भावनाओं का संसार है
मैं सिर्फ प्रेम और प्यार की भाषा जानती हूँ
मैं हर बात प्रेम से ही मानती हूँ
मैं हर दर्द सहती हूँ
फिर भी कुछ नहीं कहती हूँ
मैं हर तकलीफ और दुखः को अपने आँचल में समेट फिर भी चुप रहती हूँ
क्योंकि मैं एक नारी हूँ।

कोमल हृदय
कोमल भाव
कोमल मन
कोमल स्वभाव
ये मेरी पहचान है
कोमल विचार
अच्छा आचार
शिष्टता सभ्याचार
सौम्य-व्यवहार
ना मानूं कभी हार
ना हूँ मैं लाचार
ये मेरी पहचान है
हिम्मत रखती हूँ
ना किसी से डरती हूँ
ना रूकती हूँ
ना झुकती हूँ
सिर्फ आगे बढ़ती हूँ
हर काम को करने का जज्बा रखती हूँ
ये मेरी पहचान है।

विज्ञान को समझती हूँ
विज्ञान को जानती हूँ
क्योंकि मैं विज्ञानी हूँ



इसलिए विज्ञान को मानती हूँ
ज्ञान देती हूँ
और सिर्फ ज्ञान को ही बाँटती हूँ
ये मेरी पहचान है।

मुझे ना रोको
मुझे ना टोको
मुझे आगे बढ़ने दो
मुझे विज्ञान की दुनिया में
कामयाबी की सीढ़ियाँ चढ़ने दो
मुझे मेरे हक के लिए लड़ने दो।

मैं हर क्षेत्र में अपनी भूमिका बना रही हूँ
मैं हर एक अपना कर्तव्य निभा रही हूँ
देखो कभी माँ बनकर ममता बरसा रही हूँ
मैं हर दायित्व को निभा रही हूँ
मैं हर क्षेत्र में अपनी भूमिका बना रही हूँ।

कभी माँ बनकर
कभी सास बनकर
कभी पत्नी बनकर
कभी बहन बनकर
और कभी दोस्त बनकर
कभी हमदर्द हमसफर और हमराज़ बनकर
मैं हर एक रिश्ते को
बड़ी बखूबी से निभा रही हूँ।

मैं हर एक क्षेत्र में आगे हूँ
मैं हर एक क्षेत्र में आज कामयाब हूँ
चाहे वो क्षेत्र पढ़ाई का हो
चाहे वो क्षेत्र लड़ाई का हो



बात ओ.टी.ए. की हो या एन.डी.ए. की
बात इंडियन आर्मी की हो
या बात एयरफोर्स की
बात इंडियन नेवी की हो
या बात पुलिस फोर्स की
मैं नारी हर क्षेत्र में आगे हूँ
बात टीचिंग फील्ड की हो
तो टीचर बनकर
बात साइंटिफिक फील्ड की हो
तो बीएसआईपी में विज्ञानी बनकर
बात मेडिकल फील्ड की हो
तो डॉक्टर डेन्टिस्ट बनकर
बात नर्सिंग फील्ड की हो
तो नर्स बनकर
बात आई.ए.एस. या आई.पी.एस. अफ़सर की हो
या बात बी.एस.आई.पी. संस्थान के डायरेक्टर की

बात एयरहास्टेस की हो
या बात फिल्मी एक्टेर्स की
बात नासा की हो
या बात किसी मिशन की
बात डिजायनिंग की हो
या बात फैशन की
बात फैशन की हो तो फैशन की दुनिया में भी मैं आगे आ रही हूँ
तो देखो कभी मिस इंडिया तो कभी मिस वल्ड बनकर छा रही हूँ।

अगर हम खेल के मैदान की बात करें
तो मेरा अपना नाम है
उसमें भी मैं पीछे नहीं
चाहे वो खेल का क्षेत्र क्यों ना हो मेरी अपनी एक पहचान है।

बात स्वर्ट रन की हो
या बात मैराथन की



बात क्रिकेट की हो
या बात बैडमिंटन की हो
बात टेबिल-टेनिस की हो
या बात लॉन-टेनिस की
मैं नारी हर क्षेत्र में अव्वल हूँ
मैं नारी हर क्षेत्र में अव्वल हूँ
मेरा हर क्षेत्र में नाम है
मेरी अपनी एक पहचान है
इसलिए मुझे नारी होने पर अभिमान है
नारी होने पर अभिमान है।

अनसुया भण्डारी

माँ

कितने संघर्षों में भी सहा है भार तुम्हारा,
अब भार माँ का तुम भी उठाओ ना।
हैं दिल मे प्यार कितना माँ से तुमको,
बैठो माँ के पास कभी तुम भी बतलाओ ना।
माँ के चरणों में तो जन्नत है ऐसा लोग कहते हैं,
कभी खुद को इसी जन्नत के काबिल बनाओ ना।।
न चाहती है वो तुमसे कभी झूठी ये धन-दौलत,
मगर कामयाबी की दौलत कभी उस पर भी लुटाओ ना।
माँ जब भी बहाये आँसू तुम्हारे दूर जाने से,
दूर रहके भी रहते दिल में तुम उसके बतलाओ ना।
जब सुनती थी तोतली बातें वो तुम्हारे बचपन की,
करके फोन माँ को तुम भी दिल की बातें सुनाओ ना।

बृजेश यादव



एक यात्रा

एक पथिक एक पथ
अनंत, असीमित, दुर्लभ पथ
पथिक और उसका पथ
समय का यह चलता चक्र
दिखता न कोई सरल विकल्प
हे पथिक ! तू बढ़ता चल।।

एक पथिक और उसका पथ
परिश्रम करता अथक अनंत
चल रहा वह अडिग होकर
सोचकर लक्ष्य है निकट
हे पथिक ! तू बढ़ता चल।।

एक पथिक और उसका पथ
मन में लेकर प्रश्न अनगिनत
बढ़ रहा वह शून्य तक
हौसलो को कर बुलंद
हे पथिक ! तू बढ़ता चल।।

एक पथिक और उसका पथ
बाधाओं से सुज्जित पथ
यश अपयश है इसके रत्न
चिंतित न हो निश्चय कर
हे पथिक ! तू बढ़ता चल।।

एक पथिक और उसका पथ
मंजिल दूर, पथ है अग्निपथ
मुश्किलें हजार, किंतु दुगुना उत्साह है।
लेकर उवधरो पर मुस्कान मोहक,
हे पथिक ! तू रूकना मत।
हे पथिक ! तू बढ़ता चल।।

प्रियंका सिंह

उसकी चमक जैसे रत्नों में रूबी

मेरा नहीं कोई उससे नाता है, पर
उसकी तस्वीर जब सामने आती है
तो दिल पिघल सा जाता है,
लोगों के दिलों को ऐसा क्यों हो जाता है।



स्व. डॉ. रूबी घोष
वैज्ञानिक "ई"
1976-2023

आओ जाने क्या बात थी उसमें,
दिलो में बसती थी क्यों सबके।

सौम्य, सुशील और मासूम सी थी,
चेहरे पर मुस्कान हमेशा रहती थी,
जब किसी से बातें करती थी,
बातों में सरलता और सौम्यता हमेशा झलकती थी।

खुद की चिंता कभी न करती,
मां-बाप की सेवा में लगी थी रहती,
सबकी थी चहेती, सबसे थी यारी
अपनी सेहत की चिंता नहीं थी करती,
असमय हो गई भगवान को प्यारी।

फूलो जैसी थीं उसमें अनेक खूबी,
चमक थी उसकी जैसे रत्नों में रूबी,
कीर्ति का उसका था चाहुंओर उद्घोष,
सही पहचाना नाम था उसका **रूबी घोष**।

अश्रुपूरित विदाई एवं भावपूर्ण श्रद्धांजलि

वाई. पी. सिंह



राजभाषा हिंदी से संबंधित गतिविधियां

राजभाषा को लोकप्रिय बनाने और संचारित करने हेतु हमारा संस्थान वर्ष भर विज्ञानियों एवं विद्वान हिंदी वक्ताओं के व्याख्यान के रूप में हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन करता है। वर्ष 2022 में हिन्दी पखवाड़ा पूरे जोर-शोर से मनाया गया और विजेताओं को पुरस्कृत किया गया। विभिन्न प्रतियोगिताओं और विजेताओं की सूची अगले पृष्ठ में दी गई है। शोधार्थियों को अपने शोधकार्य को हिंदी में प्रस्तुत करने और अपने विज्ञान को आम जनमानस तक पहुंचाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। पत्रिका के अंतिम कुछ पृष्ठों में शोध प्रबंधों का सारांश प्रस्तुत किया गया है। चित्रों के माध्यम से राजभाषा से संबंधित विभिन्न गतिविधियों को देखा जा सकता है।



हिन्दी पखवाड़ा 2022 – प्रतियोगिता परिणाम

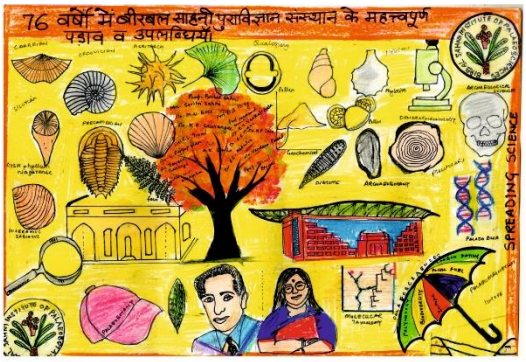
प्रतियोगिता	प्रथम पुरस्कार	द्वितीय पुरस्कार	तृतीय पुरस्कार	प्रोत्साहन पुरस्कार
टंकण	श्री रजत श्रीवास्तव	श्री अक्षय कुमार	श्री पुष्कर वर्मा	कु. प्राप्ति गुप्ता
इमला	श्रीमती संध्या सिंह	श्रीमती भावना अवस्थी	कु. प्राप्ति गुप्ता	श्री इंदर कुमार
टिप्पण	श्री राहुल गुप्ता	श्रीमती संध्या सिंह	श्री अमित कुमार मिश्रा	डॉ. संध्या मिश्रा
वाद-विवाद	डॉ. संध्या मिश्रा	श्री वाई. पी. सिंह	डॉ. आशीष कुमार मिश्रा	श्री सूरज कुमार साहू, श्री धन बहादुर कुंवर
ई-पोस्टर	कु. साधना विश्वकर्मा	कु. पूजा तिवारी	डॉ. संध्या मिश्रा	श्री अमित कुमार मिश्रा
ई-निबंध	डॉ. संध्या मिश्रा	श्री सरवेन्द्र प्रताप सिंह	श्री प्राशांत त्रिवेदी	कु. प्रियंका सिंह
अंताक्षरी	डॉ. नीलम, डॉ. आशीष कुमार मिश्रा, श्री आलोक कुमार मिश्रा एवं श्रीमती संध्या सिंह	डॉ. संध्या मिश्रा, श्रीमती मोनिका, कु. हर्षिता श्रीवास्तव, कु. प्रियंका सिंह	श्री रजत श्रीवास्तव, श्रीमती बीना, कु. नाज़िम देओरी, श्री पुष्पेंद्र पांडे	----------

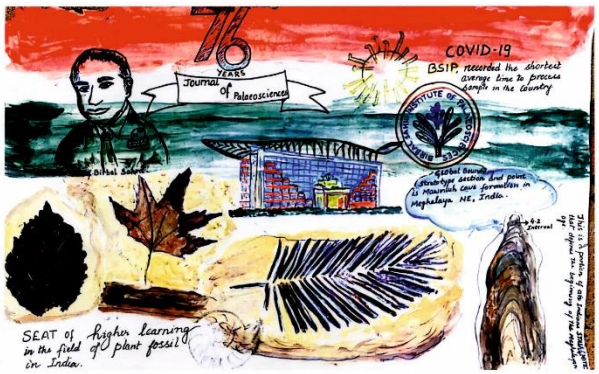
काव्य पाठ मे भाग लेने वाले प्रतिभागी:
डॉ अनसुया भण्डारी, डॉ संध्या मिश्रा, डॉ. आशीष कुमार मिश्रा, श्री योगेश कुमार, कु. आर्या पांडे, कु. प्रियंका सिंह, कु. हर्षिता श्रीवास्तव, श्री वाई. पी. सिंह एवं श्री धन बहादुर कुंवर ।

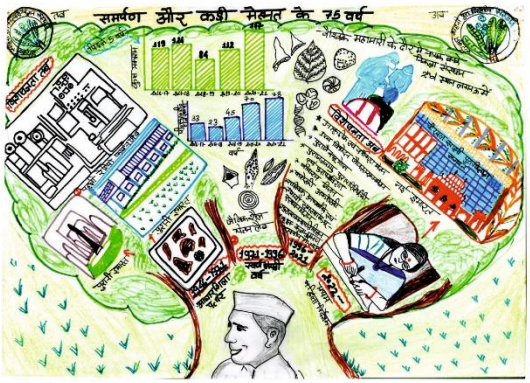
निर्णायक मंडल: प्रो. मुकुन्द शर्मा, डॉ. अनुपम शर्मा, डॉ. बिनीता फर्तियाल, डॉ. दीपा अग्निहोत्री एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्य।



हिन्दी पखवाड़ा 2022 के दौरान आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को संस्थान के संस्थापक दिवस (14 नवंबर) के शुभ अवसर पर पुरस्कृत किया गया








बीरबल साहनी पुरावनस्पतिविज्ञान संस्थान
कोविड-19 महामारी में संस्थान का कार्य प्रयोगशाला
परागा
जीवाश्म विज्ञान
जीवाश्म विश्लेषण
जीवाश्म संग्रहण
जीवाश्म अध्ययन
जीवाश्म
जीवाश्म
जीवाश्म

संस्थान में राजभाषा हिन्दी से संबंधित गतिविधियां : व्याख्यान, परिचर्चा एवं संगोष्ठियाँ




















हिंद महासागर द्विध्रुव का भारतीय मानसून पर प्रभाव
AcSIR
प्रस्तुतकर्ता
बृजेश कुमार






बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
विगत वर्षों में संस्थान की हिन्दी गतिविधियां
Azadi Ka Amrit Mahotsav
वार्षिक विवरणिका 2020-21
Digital India
Skill India


बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ
Azadi Ka Amrit Mahotsav

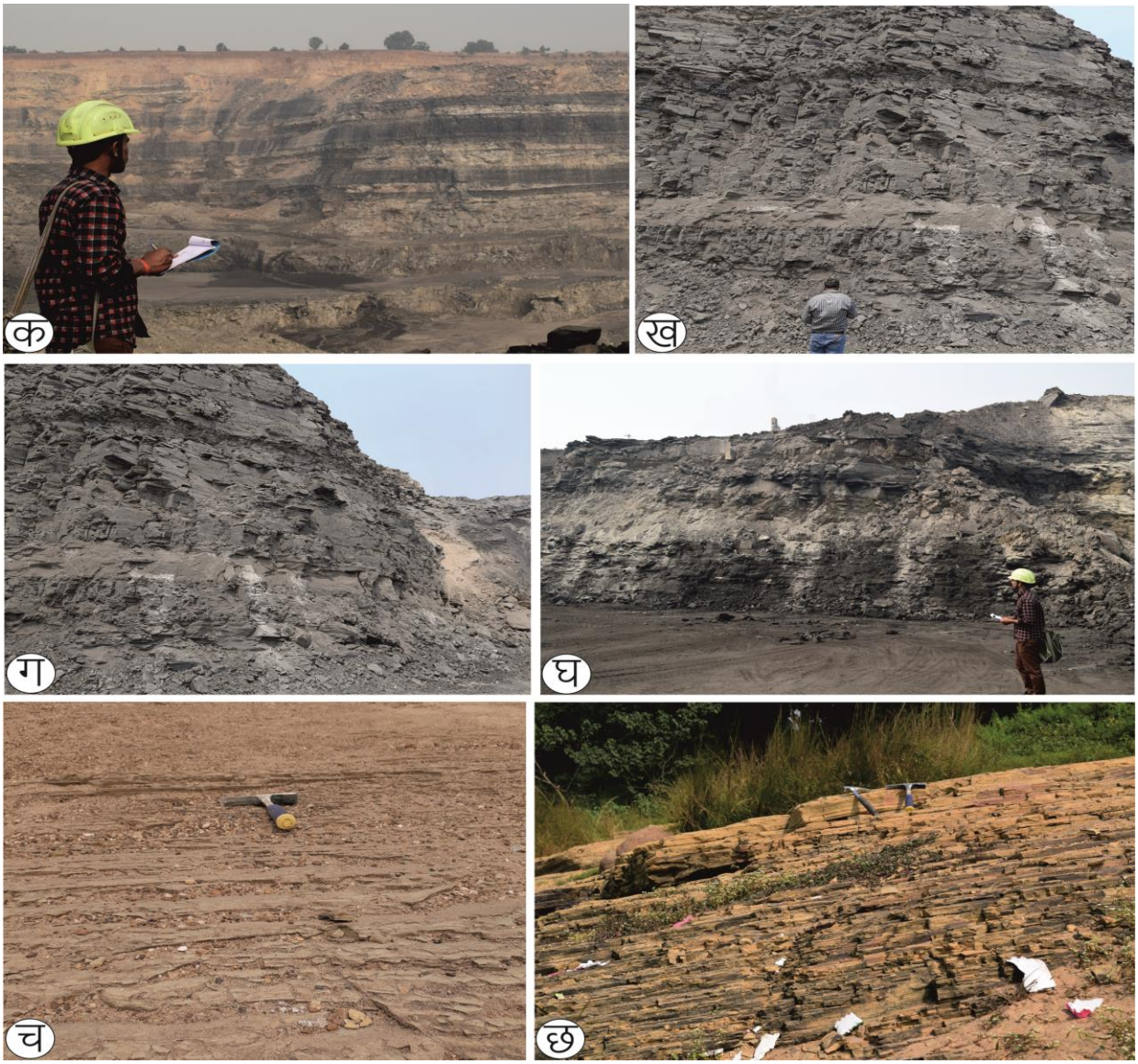


क्षेत्रीय अभियान:

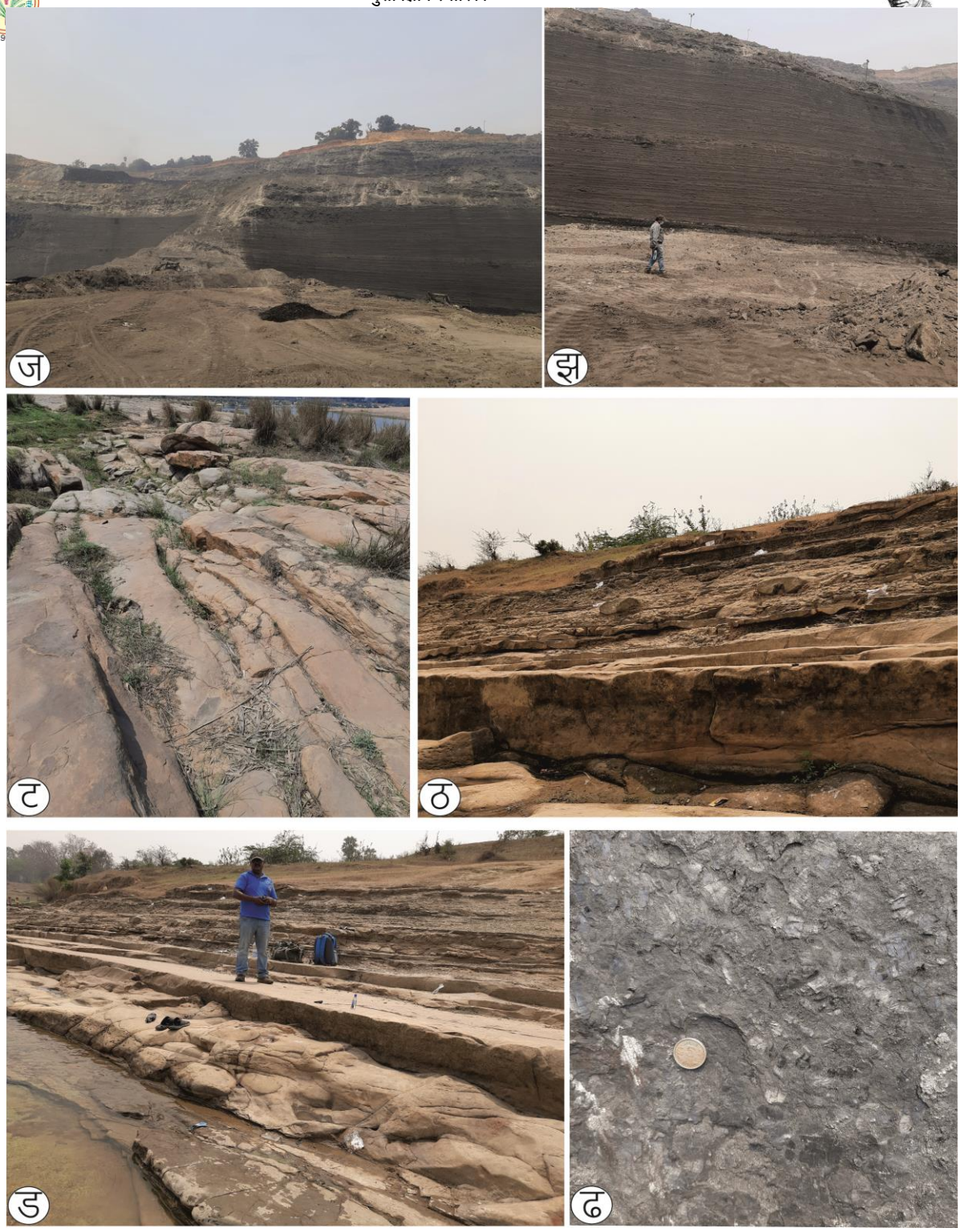
पुराविज्ञान का महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग

पुराविज्ञान अनुसंधान का मूल इसके क्षेत्रीय कार्य में निहित है और हमें विज्ञानियों एवं शोध छात्रों द्वारा विभिन्न क्षेत्र भ्रमणों के चित्रों को साझा करने में अपार हर्ष हो रहा है। पुराविज्ञान के क्षेत्र में क्षेत्रीय भ्रमण सदैव एक महत्वपूर्ण एवं प्राथमिक प्रयोजन रहा है। स्थूलजीवाश्मों एवं सूक्ष्मजीवाश्मों की जांच हेतु समय-समय पर भारतीय उपमहाद्वीप के कुछ सुदूरवर्ती इलाकों में क्षेत्रीय सर्वेक्षण किया जाता रहा है। संस्थान का संग्रहालय भारत से संग्रहीत और दुनिया-भर से प्राप्त जीवाश्मों का एक समृद्ध भंडार है। संग्रहालय का विशेष आकर्षण संस्थापना शिला है, जिसे 1949 में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा स्थापित किया गया, जिसमें 77 जीवाश्म जड़े हुए हैं।

ओडिशा के अंगुल जिले के तालचिर इलाके में स्थित कोयले की खानों तथा अन्य भूगर्भीय खंडों के चित्र (डॉ. श्रीकंठा मूर्ति एवं श्री देवेश्वर प्रकाश मिश्रा)



क) भरतपुर कोयला खदान का अवलोकन, ख-घ) भरतपुर खदान का कोयला सीम, च-छ) ब्राह्मणी नदी के किनारे शैल का बहिर्वाह।



ज-झ) जगन्नाथ खदान का दूसरा कोयला सीम (25-30 मीटर), ट) जुटिया गांव के किनारे एक्सपोज्ड खंड, ठ-ड) मंगलपुर गांव के पास ब्राह्मणी नदी के किनारे शेल का बहिर्वाह, ढ) कार्बोनेसियस शेल में चारकोल के टुकड़े

पुराजलवायु और पुरापर्यावरणीय अध्ययन के लिए केरल में वेम्बनाड आर्द्रभूमि के नमूनों को एकत्रित करने हेतु वर्ष 2022 में एक क्षेत्रीय अभियान

(डॉ. बिस्वजीत ठाकुर एवं सुश्री पूजा तिवारी)



(क) केरल की वेम्बनाड आर्द्रभूमि में सैंपलिंग साइट के रास्ते में; (ख) वेम्बनाड आर्द्रभूमि में मैंग्रोव वन; (ग) पिस्टन कोरर से कोर का निष्कर्षण; (घ) वेम्बनाड आर्द्रभूमि की सतह तलछट एकत्र करने के लिए वीन ग्रैब सैम्पलर का उपयोग; (ङ)-(ज) दक्षिण पश्चिम केरल तट के विभिन्न पारिस्थितिक क्षेत्र।

सागौन (*टेक्टोना ग्रैनडिस*) के वृक्ष-वलय नमूनों के संग्रहण हेतु छत्तीसगढ़ के विभिन्न वन विभागों में क्षेत्रीय भ्रमण (डॉ. संतोष कुमार शाह)



क. छत्तीसगढ़ का सागौन (*टेक्टोना ग्रैनडिस*) वन



ख. अवशेष वृक्ष स्तंभ से प्राप्त ठूंठ नमूनों का संग्रहण



ग. संवृद्धि बेधक प्रयुक्त करते हुए वृक्ष क्रोड नमूने का संग्रहण



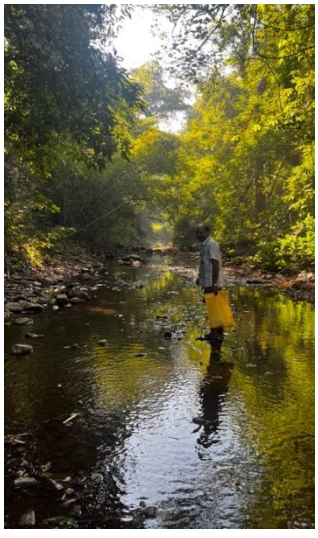
घ. वृक्ष क्रोड नमूना



ड़. वार्षिक वलय दर्शाता अवशेष सागौन ठूंठ



च. वृक्ष क्रोड सहित वृक्ष क्रोड संग्राहक (एस.के. शाह)



छ. सागौन वृक्ष की तलाश में क्षेत्र सर्वेक्षण



ज. सागौन वृक्ष



झ. क्षेत्रीय अभियान के दौरान अपराह्न-भोज

गोदावरी घाटी के कोयला क्षेत्र में क्षेत्रिय अभियान (डॉ. नेहा अग्रवाल एवं सहयोगी)



(क): कोठागुडम, गोदावरी घाटी कोयलाक्षेत्र, तेलंगाना में विवृत ढलवां खान का विहंगावलोकन



(ख): गोदावरी घाटी कोयलाक्षेत्र, तेलंगाना में विवृत ढलवां खान में बराकार अनावरण



(ग): सत्तूपल्लि क्षेत्र, तेलंगाना की गोदावरी कोयलाखान विवृत ढलवां खान



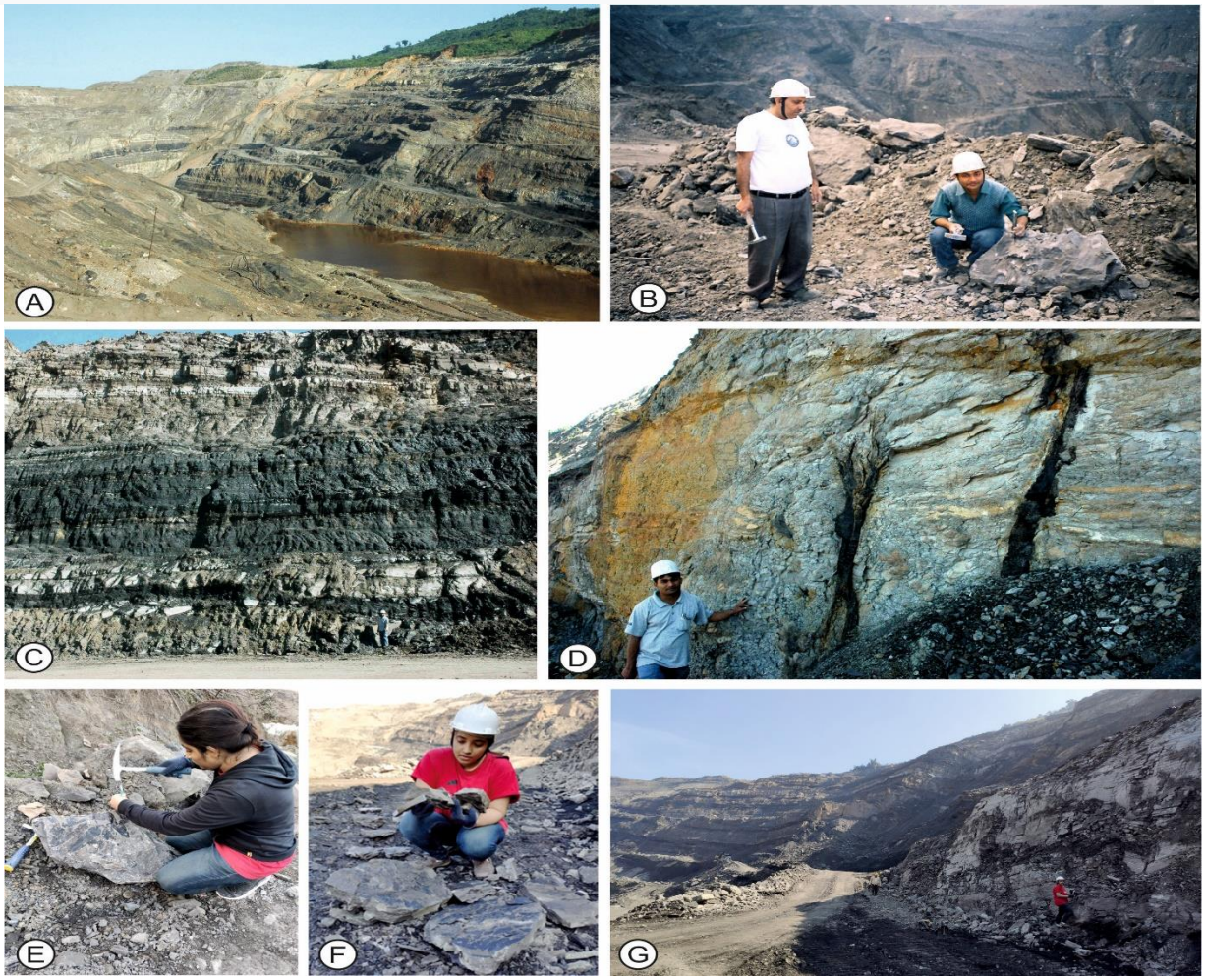
(घ): गोदावरी घाटी कोयलाक्षेत्र, दक्षिण भारत की चिंतलपुडी उप-द्रोणी में वेधित वेध-छिद्र

कच्छ (पश्चिमी भारत) के नियोजीन संस्तरों से डॉ. अनसुया भंडारी, द्वारा खोजा गया पहला और प्रचीनतम होमीनॉइड *सिवापिथेकस।* (जीवाश्म का ऊपरी जबडा)





ओलिगोसीन युग के अंतिम चरण के पौधों के जीवाश्मों के संग्रह हेतु असोम के मकुम कोयलाक्षेत्र में क्षेत्रीय भ्रमण (डॉ. गौरव श्रीवास्तव, सुश्री हर्षिता भाटिया एवं डॉ. राकेश चंद्र मेहरोत्रा)



(A) असोम में मकुम कोयलाक्षेत्र का विहंगावलोकन; (B) क्षेत्रीय कार्य के दौरान आर.सी. मेहरोत्रा एवं गौरव श्रीवास्तव; (C) मकुम कोयलाक्षेत्र, असोम में अनावरित खंड; (D) मकुम कोयलाक्षेत्र, असोम में तत्रैव परिरक्षित जीवाश्म वृक्ष स्तंभ दर्शाते गौरव श्रीवास्तव; (E) अवसादी चट्टानों से जीवाश्म उत्खनित करतीं हर्षिता भाटिया; (F) मकुम कोयलाक्षेत्र, असोम में अनावरित खंड

गारो और खासी पहाड़ियों (मेघालय) में आयोजित एक क्षेत्रीय अभियान के दौरान आधुनिक एनालॉग और पुरावनस्पति एवं पुराजलवायु अध्ययन हेतु अवसादी नमूने एकत्र किए गए (डॉ. साधन कुमार बसुमतारी)













क. पश्चिम खासी पहाड़ियों के सदाबहार जंगल का एक दृश्य, मेघालय, ख. नमूने के दौरान *नेपेंथेस खसियाना* पौधे का दृश्य (एस. के. बसुमतारी द्वारा संग्रह), ग. पश्चिमी खासी पहाड़ियों में झूम खेती का एक दृश्य, मेघालय, घ. पश्चिम खासी पहाड़ियों (मेघालय) में घास के मैदान का दृश्य, च. गारो पहाड़ियों (मेघालय) के जंगलों में आग लगने के बाद *शोरिया रोबस्टा* जंगल का दृश्य, छ. गारो पहाड़ियों (मेघालय) में *शोरिया रोबस्टा* के जंगल से सतही मिट्टी संग्रह का एक दृश्य ।

आजमगढ़ और आसपास के क्षेत्रों में मध्य गंगा मैदान के विभिन्न हिस्सों में ग्रिड आधारित स्थान में लघु तलछट कोर का संग्रह किया गया। टीम के सदस्य डॉ. मो. फिरोज क़मर, डॉ. शैलेश अग्रवाल और डॉ. पी. मूर्थिकय थे। हाल के पर्यावरण के आधुनिक डेटासेट के लिए अवसादी नमूनो को प्राप्त करने के लिए 20 सेमी लंबी पीवीसी पाइप का प्रयोग किया गया। क्षेत्रीय अभियान से संबंधित फोटोग्राफ, नमूनों के संग्रह और भंडारण के लिए कार्य पद्धति को दर्शाता है।



हिमाचल प्रदेश में सोलन घाटी से लघु हिमालय के क्रोल बेल्ट से एडियाकरन कॉम्प्लेक्स एकेंथोमोर्फिक पैलिनोफ्लोरा (ईसीएपी) की जांच के लिए जीवाश्म चर्ट का संग्रह (डॉ. वीरू कान्त सिंह एवं सहयोगी)



क. सोलन घाटी में करोल पहाड़ी की छवि, ख. सोलन घाटी में क्रोल समूह के माही गठन का शेल और कार्बोनेट अनुक्रम, ग-घ. खनोग सिंकलाइन में क्रोल समूह के चर्ट नोड्यूल्स का एकत्रीकरण



जन-संपर्क एवं अन्य गतिविधियां

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान ने अपनी स्थापना (1946) के साथ ही स्वयं को पुरावनस्पति विज्ञान (पौधों के जीवाश्मों का अध्ययन) के विषय क्षेत्र में स्थापित किया है। संस्थान ने हमारे ग्रह पर पादप जीवन के विकासात्मक स्वरूप को समझने में सराहनीय योगदान दिया है। पिछले कुछ वर्षों में, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान ने भूविज्ञान एवं संबंधित क्षेत्र में बहुविषयक अनुसंधान करने के लिए सार्थक प्रयास किए है। विभिन्न संस्थागत योजनाओं का उद्देश्य अनुसंधान और विकास क्षेत्र में देश की प्रगति को आगे बढ़ाना है। साथ ही औद्योगिक क्षेत्र और शिक्षाविदों के बीच अनुसंधानात्मक जानकारी का आदान-प्रदान और सार्वजनिकता को बढ़ाना है। इसके अतिरिक्त, संस्थान पुराविज्ञान के विभिन्न आयामों को आम जनमानस के बीच प्रसारित कर लोकिप्रय बनाने का भी महत्वपूर्ण कर्तव्य निभा रहा है। इस कर्तव्य को निभाते हुए विगत वर्षों में बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के विज्ञानियों, तकनीकी सदस्यों एवं शोधछात्रों ने जन-संपर्क गतिविधियों में बढ़ चलकर हिस्सा लिया। इसके अतिरिक्त, संस्थान देश भर में भू-विरासत संरक्षण को बढ़ावा देने की दिशा में सक्रिय रूप से नेतृत्व कर रहा है। इनमें से कुछ जन-संपर्क व अन्य गतिविधियों का संकलन इस स्तम्भ में प्रस्तुत है।

जन भागीदारी उन्नत कार्यक्रम (आउटरीच)

भारत सरकार द्वारा शुरू किए गए जन भागीदारी आउटरीच कार्यक्रम के तत्वावधान में बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी), लखनऊ ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग (डीएसटी), नई दिल्ली के तहत असोम के गोलपारा जिले (गुवाहाटी-गोलपारा राजमार्ग) में बोडो जनजातियों के स्थानीय लोगों के बीच दुर्लभ और सामान्य ऑर्किड (एपीफाइटिक पौधों) के लिए एक विशाल जागरूकता और वृक्षारोपण कार्यक्रम 17 अप्रैल, 2023 को आयोजित किया गया। इस विशाल ऑर्किड वृक्षारोपण की योजना और नेतृत्व बीएसआईपी, लखनऊ के वरिष्ठ विज्ञानी डॉ. साधन कुमार बसुमातारी के मार्गदर्शन में संपन्न हुआ। यह वृक्षारोपण कार्यक्रम पारिस्थितिक संतुलन, संरक्षण और समाज के सतत विकास हेतु चलाया गया था। ऑर्किड की लगभग 250 सामान्य और दुर्लभ प्रजातियों जैसे *राइनकोस्टीलिस रेटुसा*, असोम का राजकीय फूल (जिसे फोक्सटेल ऑर्किड के रूप में भी जाना जाता है), *डेंड्रोबियम, सिंबिडियम, बुलबोफाइलम* आदि प्रजातियों को साल (*शोरिया रोबस्टा*) के पेड़ के तने पर लगाया गया। स्थानीय जनजातीय लोगों को इस सरकारी कार्यक्रम के बारे में बताया गया एवं पर्यावरण बनाम समाज के लाभ के लिए इस वृक्षारोपण कार्यक्रम में सभी ने बहुत उत्साह से भाग लिया। यह वृक्षारोपण कार्यक्रम निश्चित रूप से निकट भविष्य में इस स्थान को धीरे-धीरे एक पर्यटन स्थल और अनुसंधान केंद्र के रूप में परिवर्तित करने में सहायता करेगा।



कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा हेतु विशेष जागरूकता अभियान

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बीएसआईपी), लखनऊ ने निदेशक डॉ. वंदना प्रसाद के नेतृत्व में 25 नवंबर से 10 दिसंबर, 2022 तक अपने परिसर में 'कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा' के लिए एक विशेष जागरूकता अभियान की प्रभावी शुरुआत और योजना बनाई। यह विशेष अभियान महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा 'कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013' के तहत शुरू किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य महिलाओं के आत्मविश्वास को बढ़ाने, स्वस्थ और समृद्ध समाज के निर्माण में उनकी क्षमता का एहसास करने के साथ-साथ कार्यस्थल और कार्यालयों में महिलाओं की सुरक्षा और समग्र सशक्तिकरण सुनिश्चित करना है। बीएसआईपी की वरिष्ठ विज्ञानी एवं कार्यक्रम समन्वयक डॉ. बिनीता फर्त्याल ने दर्शकों का स्वागत किया और अवगत कराया कि 25 नवंबर को हर साल महिलाओं के खिलाफ हिंसा के उन्मूलन के लिए “अंतर्राष्ट्रीय दिवस” के रूप में मनाया जाता है और 10 दिसंबर को हर साल “अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार” के रूप में मनाया जाता है। संस्थान ने "भारत में एस.टी.ई.एम. के क्षेत्रों में लैंगिक समानता" विषय पर एक वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित करके महिला सशक्तिकरण और सुरक्षा पर अपना अभियान शुरू किया। अधिकांश प्रतिभागियों ने उपरोक्त विषय के पक्ष में अपने विचार प्रस्तुत किए। साथ ही 'डिजिटल युग में महिला सशक्तिकरण' विषय पर पोस्टर प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। वैज्ञानिक, तकनीकी और प्रशासनिक सहित बीएसआईपी के सभी कर्मचारियों और दैनिक वेतन-भोगियों ने अभियान में सक्रिय रूप से भाग लिया और महिलाओं के प्रति सभी प्रकार की हिंसा और भेदभाव को खत्म करने हेतु जागरूकता बढ़ाने और यह सुनिश्चित करने के लिए एक-दूसरे को प्रेरित किया।





महिला विज्ञानियों एवं प्रौद्योगिकीविदों हेतु जैवविविधता संरक्षण पर साप्ताहिक प्रशिक्षण कार्यशाला

भारतीय वन्यजीव संस्थान (WII), देहरादून में 14 नवंबर से 18 नवंबर, 2022 तक "जैव-विविधता संरक्षण" पर पांच दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली द्वारा वित्त पोषित यह प्रशिक्षण कार्यक्रम सरकारी क्षेत्र में कार्यरत पर्यावरण विज्ञानियों और प्रौद्योगिकीविदों हेतु था। हमारे देश भर के विभिन्न संस्थानों और संगठनों (डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, मत्स्य संस्थान, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान आदि) के उन्नीस लोगों ने इस कार्यक्रम में भाग लिया।

भारत का WII एक प्रसिद्ध संगठन है जो 1982 में स्थापित किया गया। डब्ल्युआईआई शैक्षिक कार्यक्रम, शैक्षणिक पाठ्यक्रम एवं वन्यजीव अनुसंधान और प्रबंधन परामर्श प्रदान करता है। संस्थान देश भर में जैव-विविधता से संबंधित विषयों पर अनुसंधान में सक्रिय रूप से शामिल है। 1977 से अब तक दो हजार से अधिक अधिकारी वन्यजीव प्रबंधन में प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं।

इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य जैव विविधता संरक्षण के प्रति प्रतिभागियों की जागरूकता बढ़ाना; प्राकृतिक संसाधनों, आवासों और प्रजातियों की गिरावट में योगदान करने वाले कारक; जैव विविधता संरक्षण के लिए सर्वोत्तम अभ्यास; व्यावहारिक संरक्षण मुद्दे; और एक साथ जुड़ने के तरीके और वैज्ञानिकों के बीच सूचना साझा करने की सुविधा प्रदान करना था।

एनएमसीजी-डब्ल्यूआईआई प्रोजेक्ट की वैज्ञानिक और प्रशिक्षण समन्वयक डॉ. संगीता अंगोम ने परिचय की शुरुआत करते हुए स्वागत भाषण दिया। डब्ल्यूआईआई की रजिस्ट्रार और वैज्ञानिक 'G' डॉ. रुचि बडोला ने कई डीएसटी-प्रायोजित पाठ्यक्रमों और डब्ल्यूआईआई मिशन के बारे मे हमे अवगत किया। डॉ. वाई.वी. झाला, डीन फैकल्टी ऑफ वाइल्डलाइफ साइंसेज, डब्ल्यूआईआई, और डॉ. रेणु सिंह, निदेशक, वन अनुसंधान संस्थान



समारोह के अन्य वक्ता थे । डॉ. आकाश मोहन रावत, प्रोजेक्ट एसोसिएट, NMCG-WII प्रोजेक्ट, WII ने उद्घाटन समारोह का समापन करते हुए धन्यवाद प्रस्ताव दिया।

इस एक सप्ताह के पाठ्यक्रम में डब्ल्यूआईआई के प्रख्यात वैज्ञानिकों और राष्ट्रीय ख्याति के अन्य विषय-विशिष्ट संसाधन व्यक्तियों द्वारा कई महत्वपूर्ण विषयों पर वार्ताएं हुईं। इन चार दिनो में प्रतिभागियों के लिए विशेष प्रशिक्षण प्रदान किया गया, जिसमें दैनिक योग सत्र, फोरेंसिक लैब में वार्तालाप, डब्ल्यूआईआई नेचर ट्रेल का दौरा, इकोटॉक्सीकोलॉजी और जीएसआई लैब का दौरा, टेक्नोलॉजी लैब का दौरा, राजाजी नेशनल पार्क का फील्ड दौरा, गंगा अवलोकन, चंडी घाट, हरिद्वार, गंगा आरती, परमार्थ निकेतन, ऋषिकेश, आसन कंजर्वेशन रिजर्व में बर्ड वाचिंग का दौरा, हेस्को और शुक्लापुर का दौरा शामिल है।

इस प्रशिक्षण के माध्यम से हमने जाना कि संरक्षण क्षेत्रों पर बहुत अधिक दबाव है, समय के साथ जैव विविधता में गिरावट आ रही है, और कई प्रजातियां विलुप्त होने के कगार पर हैं। विज्ञान द्वारा खोजे जाने से पहले ही कई प्रजातियों के विलुप्त होने की संभावना है। विविधता के दस्तावेज़ीकरण, प्रजातियों के संरक्षण और विलुप्त होने की रोकथाम की तत्काल आवश्यकता है। जैव विविधता की रक्षा की आवश्यकता के बारे में सभी को जागरूक किया जाना चाहिए। जैव विविधता के प्रबंधन और संरक्षण के पीछे का विज्ञान हाल के वर्षों में काफी विकसित हुआ है। देश भर में कई क्षेत्रों में काम कर रहे वैज्ञानिकों और तकनीशियनों को इन समस्याओं और विकासों से अवगत कराया जाना चाहिए और जैव विविधता के संरक्षण में सबसे हाल के विकासों का प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए।

आभार: इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेने का अवसर देने और इस रिपोर्ट को प्रकाशित करने की अनुमति देने के लिए हम निदेशक, बीएसआईपी के आभारी हैं।



डबल्यू.आई.आई. के प्रशिक्षण के दौरान विभिन्न गतिविधियां एवं समापन समारोह के दौरान सामुहिक फोटोग्राफी

नीलम दास एवं अनसुया भण्डारी

8वां भारत अंतर्राष्ट्रीय विज्ञान महोत्सव-2022 (आईआईएसएफ), भोपाल, मध्य प्रदेश (21 से 24 जनवरी) के अंतर्गत मौलाना आजाद राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान (एमएएनआईटी) में आयोजित बी.एस.आई.पी. लखनऊ के स्टाल पर ड़ॉ. श्रीवरी चंद्रशेखर, सचिव, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली एवं अन्य विज्ञानीगण। विद्यार्थीगण जीवाश्मों के प्रति गहरी रूचि दर्शाते हुए







दीनदयाल अनुसंधान संस्थान द्वारा आयोजित ग्रामोद्य मेला में बी.एस.आई.पी. लखनऊ के स्टाल का माननीय श्री कमल पटेल, कृषि मंत्री, मध्य प्रदेश सरकार के द्वारा भ्रमण



संग्रहालय भ्रमण




National Science Day
28 February, 2023
Birbal Sahni Institute of Palaeosciences, Lucknow


AcSIR
AcSIR Societal Programme
(Course-I)
Batch-August, 2021















इंटरनेशनल स्कूल और संगोष्ठी - 2023 : मॉनसून के विभिन्न पारिस्थितिक क्षेत्रों में लैंडयूज-लैंडकवर मैपिंग और मॉडलिंग पर रिपोर्ट

भारतीय उपमहाद्वीप में इस प्रकार की परियोजना को इंटरनेशनल यूनियन फॉर क्वाटरनरी रिसर्च (INQUA) द्वारा प्रथम बार अनुमोदित किया गया है। INQUA के अंतर्गत मानव एवं जैवगोलार्ध आयोग (HABCOM) द्वारा स्वीकृत मॉनसून के विभिन्न पारिस्तिथिक क्षेत्रों में भूपयोग व भू-आवरण मानचित्रण (LEM) परियोजना को लखनऊ के बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान ने प्रायोजित किया।

यह चार वर्षीय परियोजना बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान के दो विज्ञानी त्रिना बोस एवं अंजलि त्रिवेदी तथा मणिपाल विश्वविद्यालय में कार्यरत नव्या रघु (पोस्ट डॉक्टरेट) को दी गई। इसके अलावा बीएसआईपी व कुछ अन्य संस्थानों के विभिन्न विज्ञानी एवं शोधछात्र जैसे, परमिंदर सिंह रणहोत्रा, प्रवीण सुकुमारन, अखिलेश कुमार यादव, मयंक शेखर, अनुराग कुमार, आकाश श्रीनिवासन, अनुष्का ओझा, आर्या पाण्डेय, मोहम्मद इकराम, अवनीश मिश्रा, आयोजन में शामिल थे।

इस परियोजना का उद्देश्य पिछले 12 हजार वर्षों में जलवायु परिवर्तन के आधुनिक समकक्षों को मापने के लिए मानसून के विभिन्न पारिस्थितिक क्षेत्रों में लैंडयूज - लैंडकवर संकेतकों का सर्वेक्षण करना एवं मॉडल तैयार करना है। यह अंतिम चतुर्थमहाकल्प अवधि के दौरान प्राकृतिक जलवायु परिवर्तन स्वरूप के लिए मानसून जैवक्षेत्र में प्रचलित ज्ञान अंतराल का पता लगाएगा तथा प्रकृति पर मानवजनित प्रतिकूल प्रभावों को दर्शाएगा तथा विभिन्न स्थानों में असहजता और पूर्वानुमान आकलन की निर्भरता को मापेगा। LEM ने उष्णकटिबंधीय शुष्क सदाबहार वनों को समझने के उद्देश्य से पश्चिमी विदर्भ, महाराष्ट्र, भारत में 13 से 26 मार्च 2023 तक अपना पहला अंतर्राष्ट्रीय स्कूल और संगोष्ठी (LEM-ISS) आयोजित किया।

LEM-ISS-2023; विज्ञान और इंजीनियरिंग अनुसंधान बोर्ड (एसईआरबी), पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय (एमओईएस), भारत सरकार, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान (बी.सा.पु.सं.); एसोसिएशन ऑफ क्वाटरनरी रिसर्चर्स (एओक्यूआर) एवं वन विभाग, महाराष्ट्र सरकार से समर्थित है। डॉ. पंजाबराव देशमुख प्रशासनिक प्रबोधिनी, अमरावती एवं विज्ञान भारती विदर्भ प्रदेश मंडल ने भी स्थानीय सहायता प्रदान की।

भारत, नेपाल और श्रीलंका के कुल 22 प्रशिक्षु प्रतिभागियों ने अन्य ईसीआर के साथ इस स्कूल में भाग लिया तथा भारत, श्रीलंका, फ्रांस, ऑस्ट्रिया, यूनाइटेड किंगडम



और संयुक्त राज्य अमेरिका के विशेषज्ञों को आमंत्रित किया। इसमें विभिन्न पृष्ठभूमि के प्रशिक्षु जैसे पुरातत्व, भूगोल, भू-विज्ञान, वनस्पतिविज्ञान और सुदूर संवेदी के आदि के छात्र सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त स्कूल और संगोष्ठी में व्यक्तिगत रूप से और ऑनलाइन व्याख्यान, मॉडलिंग और व्यावहारिक वर्णन भी सन्निहित थे। पांच दिनों के व्यापक क्षेत्र प्रशिक्षण के अंतर्गत पराग विश्लेषण हेतु मिट्टी के सतही नमूने संजोने, सतही वनस्पति मानचित्रण, वृक्षकालानुक्रमण के लिए नमूने एकत्र करने और आधुनिक एनालॉग विकसित करने की सही विधियों को समझाया गया।

पुरापाषाणकालीन पुनर्निर्माण के लिए स्कूल में लोनार उल्का क्रेटर और एलोरा गुफाओं के यूनेस्को विश्व विरासत स्थल की यात्रा भी सम्मिलित थी। 32 आमंत्रित व्याख्यान, 17 मुख्य व्याख्यान, और प्रख्यात विशेषज्ञों की एक समूह चर्चा के साथ कुल आठ शैक्षणिक सत्र इस गहन दो सप्ताह के फील्ड स्कूल में आयोजित किये गये। फील्ड स्कूल एक संगोष्ठी के साथ संपन्न किया गया था, जहां प्रशिक्षु प्रतिभागियों ने अपने चल रहे शोध कार्य और फील्ड सत्रों के दौरान नोट किए गए विभिन्न अवलोकनों को प्रस्तुत किया, जिसने उभरते और स्थापित शोधकर्ताओं के बीच शंकाओं का निवारण किया।

इस फील्ड स्कूल के तत्वावधान में स्कूली छात्रों हेतु एक सार्वजनिक उन्नत (आउटरीच) कार्यक्रम भी आयोजित किया गया। फूलों के मौसम में यहां विभिन्न बायोम के विशेषज्ञों की एक बैठक हुई। साथ-ही शोध छात्रों और एशिया के ईसीआर के वार्षिक फील्ड स्कूलों के साथ एक लंबी अवधि की परियोजना का शुभारंभ हुआ। इसके अलावा, संगृहीत नमूनों को पराग, पत्ती, वृक्ष-वलय और तलछट के स्थानिक वितरण और समस्थानिक विश्लेषण हेतु संसाधित किया जाएगा। अंत में, परियोजना के दायरे में, एक दक्षिण एशियाई जैव विविधता पोर्टल भी डिजाइन और कार्यान्वित किया जाएगा।

इसके अलावा, बीएसआईपी विज्ञानियों की टीम ने नागपुर, महाराष्ट्र के पश्चिमी विदर्भ, क्षेत्र में छात्रों के लिए एक विज्ञान उन्नत कार्यक्रम आयोजित किया। इस अवसर पर विज्ञानियों व विद्यार्थियों ने विज्ञान पर चर्चा की। विज्ञानियों एवं छात्रों की इस परिचर्चा को स्थानीय समाचार पत्रों ने भी प्रकाशित किया।









चित्र (1) : LEM 2023 का उद्घाटन समारोह

चित्र (2) : LEM 2023 के अंतर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रम में भाग लेते हुये प्रशिक्षु

चित्र (3) : कार्यशाला पूर्ण होने के पश्चात प्रमाण पत्र प्राप्त करते हुए प्रशिक्षु

चित्र (4) : LEM 2023 के समापन समारोह की सामुहिक फोटो

LEM 2023 कार्यशाला के उद्घाटन, क्षेत्र भ्रमण, प्रशिक्षण कार्यशालाएँ एवं समापन की एक झलक





हाई-एंड वर्कशॉप (कार्यशाला):
"आपदा और जलवायु-उतार-चढाव: अनुकूलन, शमन तथा सतत विकास"

हाई-एंड वर्कशॉप "कार्यशाला" भारत सरकार का एक प्रतिष्ठित प्रयास है, जिसे एक्सीलरेट विज्ञान योजना के तहत विज्ञान और इंजीनियरिंग अनुसंधान बोर्ड (एसईआरबी), नई दिल्ली ने शुरू किया है। इस योजना का उद्देश्य अनुसंधान और विभिन्न विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के होनहार पी.जी. और पी.एच.डी. छात्रों को मार्गदर्शित करना तथा शिक्षा और प्रशिक्षण कार्यक्रमों को अन्य हस्तक्षेपों के माध्यम से अनुसंधान उत्पादकता को उन्नत करना था।

बीएसआईपी, लखनऊ में आयोजित कार्यक्रम का उद्देश्य जलवायु उतार-चढाव और आपदा जोखिम में कमी पर ध्यान केंद्रित करते हुए उन्नत अनुसंधान और शिक्षा कार्यक्रमों को बढ़ावा देना था। जिनमें प्रमुख रूप से निम्नलिखित विषय शामिल थे जैसे मानव जीवन पर जलवायु परिवर्तन और आपदाओं के वर्तमान और भावी प्रभावों को संबोधित करने के लिए सहयोग, लिंक और तालमेल को पुष्ट करने हेतु युवा शोधकर्ताओं की सहभागिता, छात्रों के साथ-साथ आपदा जोखिम और जलवायु परिवर्तन विशेषज्ञों को संवेदनशील बनाना और एक साथ लाना; जलवायु परिवर्तन के कारण आपदा जोखिम प्रबंधन क्षेत्र में आने वाली नई संभावनाओं और चुनौतियों का आकलन करना; समग्र आपदा जोखिम में कमी और जलवायु उतार-चढाव हेतु प्रकृति-आधारित समाधान; रिमोट सेंसिंग; जीआईएस के दायरे की पहचान करना था। परिणामस्वरूप, इस आयोजन ने मानव जाति और जैव विविधता पर जलवायु परिवर्तन और आपदाओं के प्रभावों को कम करने के समाधान खोजने में रुचि रखने वाले युवा शोधकर्ताओं का एक समूह बनाने में मदद की।

उद्घाटन सत्र का सूत्रपात डॉ. शिल्पा पांडे, कार्यक्रम आयोजिका और विज्ञानी, बीएसआईपी, लखनऊ ने कार्यशाला के विषय के परिचय के साथ किया। उन्होंने कार्यशाला के दौरान प्रख्यात वक्ताओं द्वारा कवर किए गए उद्देश्यों और विषयों जैसे जलवायु परिवर्तन, आपदा जोखिम में कमी और सतत विकास की अवधारणाओं और पहलुओं के बारे में जानकारी दी। आपदा जोखिम चालक के रूप में जलवायु परिवर्तन; सामाजिक चुनौतियों से निपटने हेतु प्रकृति आधारित समाधान, जलवायु- उतार-चढाव अनुकूलन, शमन और सतत विकास; अत्यधिक मौसम संबंधी आपदाएँ; जलवायु अनुकूल कृषि हेतु स्मार्ट प्रथाएँ एवं प्रौद्योगिकियाँ; जटिल हिमालयी भू-भाग में आपदा जोखिम प्रबंधन; आपदा प्रबंधन में रिमोट सेंसिंग और जीआईएस का अनुप्रयोग; तटीय आपदाओं के प्रति सामाजिक-पारिस्थितिकीय उतार-चढ़ाव; जलवायु परिवर्तन शमन में ब्लू कार्बन की भूमिका; जलवायु परिवर्तन समाधान में महिलाएँ: एक समग्र और अधिकार-आधारित दृष्टिकोण था।



बीएसआईपी निदेशक डॉ. वंदना प्रसाद ने कार्यशाला को संबोधित किया और उसका अवलोकन प्रस्तुत किया। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि जलवायु परिवर्तन से जुड़े बढ़ते जोखिमों से निपटने के लिए आपदा जोखिम में कमी और अधिक मजबूत विकास योजना महत्वपूर्ण हैं। श्री आशीष तिवारी, सचिव, पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार और डॉ. के. रविचंद्रन, निदेशक, भारतीय वन प्रबंधन संस्थान, भोपाल क्रमशः मुख्य अतिथि और सम्मानित अतिथि थे। श्री आशीष तिवारी ने सरकार द्वारा इस क्रम में की जा रही पहलों के बारे में जानकारी साझा की। जलवायु परिवर्तन पर उत्तर प्रदेश सरकार ने ग्राम पंचायत विकास योजना में जलवायु परिवर्तन अनुकूलन और आपदा जोखिम न्यूनीकरण के एकीकरण के लिए एसओपी के विकास पर भी जोर दिया। डॉ. के. रविचंद्रन ने जलवायु परिवर्तन, डीआरआर और सतत विकास की अवधारणाओं और मुद्दों पर ध्यान केंद्रित किया। मुख्य अभिभाषण प्रो. अनिल के. गुप्ता, प्रभाग प्रमुख, परियोजना निदेशक एवं सीओई, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान, नई दिल्ली ने दिया। उन्होंने डीआरआर के हालिया घटनाक्रम, सबक और भावी रणनीतियों पर अपने विचार साझा किए। उद्घाटन सत्र जलवायु परिवर्तन से निपटने और प्राकृतिक आपदाओं को प्रभावी ढंग से प्रबंधित करने के लिए योग्य जानकारी साझा करने के लिए सभी वक्ताओं, गणमान्य व्यक्तियों को डॉ. शिल्पा पांडे द्वारा प्रस्तावित धन्यवाद प्रस्ताव के साथ समाप्त हुआ। उन्होंने इस आयोजन के वित्तपोषण के लिए सचिव, एसईआरबी, नई दिल्ली का भी आभार व्यक्त किया।

कार्यशाला में भाग लेने के लिए 78 आवेदन प्राप्त हुए, उनमें से प्रतिष्ठित संगठनों के 25 प्रतिभागियों को कार्यक्रम के लिए चुना गया था। इस कार्यक्रम के दौरान, वक्ताओं के साथ सभी प्रतिभागियों ने विभिन्न सुसज्जित बीएसआईपी प्रयोगशालाओं और संग्रहालय का दौरा किया। इसके अलावा, प्रतिभागियों के लिए लखनऊ में एक स्थानीय यात्रा भी आयोजित की गई थी, जिसमें बड़ा इमामबाड़ा, क्लॉक टॉवर, गोमती रिवर फ्रंट, हज़रतगंज जैसे ऐतिहासिक और प्रसिद्ध स्थलों का भ्रमण था। प्रतिभागियों को प्रिंटेड टी-शर्ट भी वितरित की गई।

इस एक सप्ताह की कार्यशाला को शानदार सफलता मिली उल्लेख्य है कि प्रतिभागियों से सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त हुई और सभी तकनीकी सत्र उत्पादक और इंटरैक्टिव रहे। प्रतिभागियों को एक घंटे का समय दिया गया जिसमें 15 बहुविकल्पीय प्रश्नों की प्रश्नावली और 10 लघु प्रकार के प्रश्न थे ताकि उनकी यादों को ताजा किया जा सके कि उन्होंने हाई-एंड कार्यशाला के इन 7 दिनों में क्या ज्ञानार्जन किया। समग्रतः कहा जा सकता है कि इस आयोजन ने वक्ताओं और युवा शोधकर्ताओं के मध्य दूरियों को कम करने हेतु एक सफल प्रयास किया।


High End Workshop (KARYASHALA)
December 07 - 13, 2022
Climate Change and Climate Variability: Impacts, Adaptation and Mitigation in Indian Agriculture

शिल्पा पांडे



स्वच्छता विशेष अभियान 2.0

भारत सरकार द्वारा विशेष अभियान 2.0 की घोषणा दिनांक 02 अक्टूबर से 31 अक्टूबर, 2022 के दौरान की गई, जिसके तहत सरकारी कार्यालयों में स्वच्छता और लंबित कार्यों को कम करने पर ध्यान केंद्रित किया गया। विशेष अभियान 2.0 की तैयारी का हिस्सा इससे पहले 14 सितंबर को डॉ. जितेंद्र सिंह, मंत्री (स्वतंत्र प्रभार) विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा विशेष अभियान 2.2 पोर्टल के शुभारंभ के साथ शुरू हुआ। माननीय केंद्रीय मंत्री डॉ. जितेंद्र सिंह द्वारा 2 अक्टूबर से 31 अक्टूबर 2022 तक शुरू किए गए विशेष अभियान 2.0 अभियान के अनुसरण में स्वच्छता कार्यक्रम और स्क्रैप का समय पर और प्रभावी निपटान सुनिश्चित करने के लिए, बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान, लखनऊ ने अपना अभियान दिनांक 06 अक्टूबर, 2022 से शुरू किया और 31 अक्टूबर 2022 को डॉ. श्रीवारी चंद्रशेखर, पूर्व-सचिव, डीएसटी, भारत सरकार, नई दिल्ली और डॉ. वंदना प्रसाद, निदेशक, बी.एस.आई.पी. के नेतृत्व में समाप्त हुआ।

संस्थान ने विभिन्न प्रकार के कचरे जैसे खरपतवार, घास, रसायन, प्लास्टिक, ई-कचरे, मलबे को हटाकर, विभिन्न कोनों पर जगह बनाकर काम करने वाली प्रयोगशालाओं सहित वस्तुओं, मैसिरेश्न और जियो-केमिकल प्रसंस्करण इकाइयों को ठीक से व्यवस्थित करके स्वच्छता के अभियान की शुरुआत की। संस्थान के गलियारों और कई अन्य स्थानों पर बीएसआईपी के विज्ञानियों, तकनीकी एवं प्रशासनिक कर्मचारियों एवं छात्र व छात्राओं ने अभियान में सक्रिय रूप से भाग लिया और एक दूसरे को तख्तियों के संदेशों के माध्यम से कार्यस्थल और आसपास के वातावरण को साफ रखने की आदत अपनाने के लिए प्रेरित किया। स्वच्छता अभियान को और बढ़ाने के लिए दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को सावधानीपूर्वक किया गया है और रिकॉर्ड किया गया है। स्वच्छता अभियान 2.0 के लिए कार्यसमिति में डॉ. वंदना प्रसाद, डॉ. साधन के. बसुमातारी, सम्मिलित थे। डॉ. बिस्वजीत ठाकुर, डॉ. कमलेश कुमार, रजिस्ट्रार, बीएसआईपी और अनुभाग अधिकारी (डब्ल्यू एंड बी), बीएसआईपी, लखनऊ स्वच्छता अभियान का निरीक्षण और निगरानी हेतु नियुक्त किये गये थे। इस अभियान का संदेश हमें खुद को और अपने आस-पास को स्वच्छ बनाने और राष्ट्र निर्माण की दिशा में एक स्वयंभू पहल विकसित करने के लिए आगे बढ़ने का एहसास दिलाता है। इस प्रकार स्वच्छता हमें स्वस्थ और सक्रिय जीवनशैली जीने और अपने प्रियजनों के साथ दीर्घ जीवन-यापन करने में मदद प्रदान करेगी। कुछ चुनिंदा तस्वीरें विशेष अभियान 2.0 की झलक दिखाती हैं।


Kindness is next to Godliness.
Shot on Y17
Vivo AI camera


After
Don't be litter
Stop the litter!
The key to a
cleaner planet
is in your hands.
NEW YORK
TEXAS
JACK&JONES



बिस्वजीत ठाकुर एवं साधन कुमार बसुमतारी

29 दिसंबर, 2022 को लखनऊ में पर्यावरण वन और जलवायु परिवर्तन विभाग यूपी सरकार द्वारा आयोजित एक कार्यशाला में "यूपी के वेटलैंड्स और नीति अंतराल: जलवायु परिवर्तन शमन और सतत विकास के लिए एकीकृत समाधान" पर शोध कार्य प्रस्तुत किया।





27-31 जनवरी, 2023 के दौरान आईआईटी गांधीनगर में आयोजित क्लाइमेट एक्शन नाउ (सीएएन) कार्यशाला में अतिथि वक्ता के रूप में आमंत्रित और दो सत्रों की अध्यक्षता की एवं "जलवायु परिवर्तन में पुराविज्ञान अनुसंधान की प्रासंगिकता" विषय पर एक व्याख्यान दिया। कार्यशाला के बाद, भविष्य के वैज्ञानिक सहयोग के लिए निदेशक, जीईईआर फाउंडेशन, गांधीनगर के साथ एक बैठक आयोजित की गई।



शिल्पा पांडे

शोध प्रबंध सारांश (पी-एच.डी. विद्या वाचस्पति की उपाधि)

शोधकर्ता का नाम: डॉ. अमृतपाल सिंह चड्ढा

शोध का शीर्षक: रॉक वार्निश का भू-रासायनिक लक्षण वर्णन और विद्युत रासायनिक उपकरणों में इसका अनुप्रयोग।

पर्यवेक्षक: डॉ. अनुपम शर्मा, विज्ञानी-जी, बी.सा.पु.सं., लखनऊ एवं डॉ. एन.के. सिंह (सह-आचार्य), रसायन विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

विभाग का नाम: भू-रासायनिक विभाग



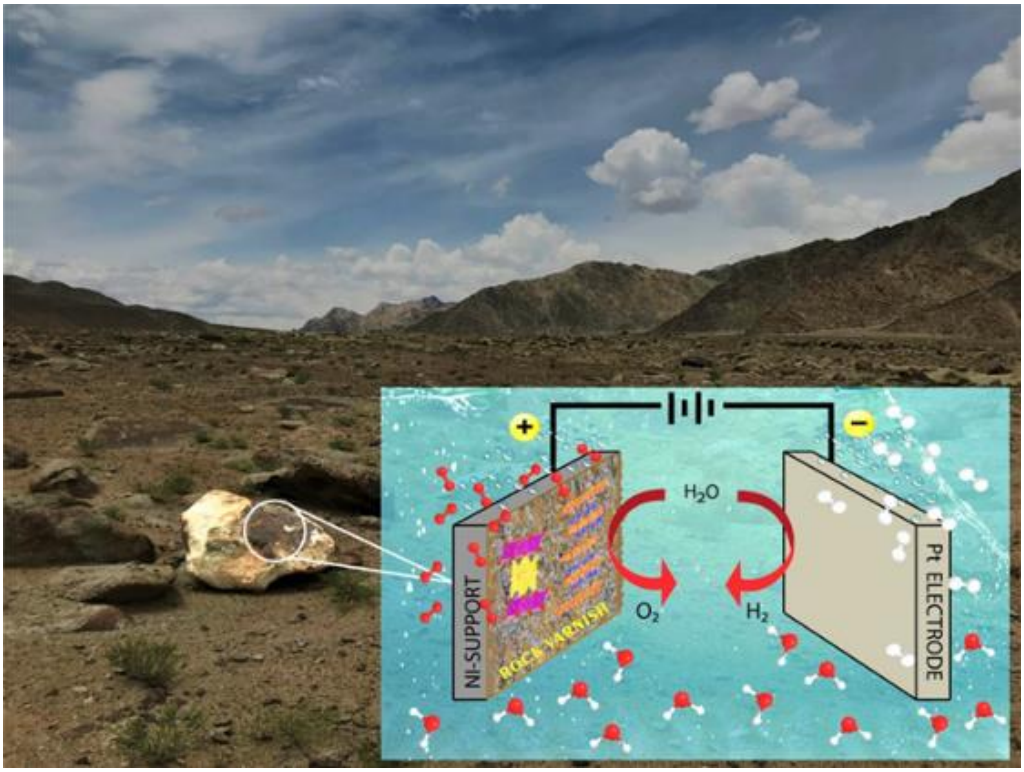
विश्वविध्यालय का नाम एवं वर्ष: लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (2022)

सारांश

दुनिया भर के शुष्क और अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में विभिन्न चट्टानों (शैल) पर पाए जाने वाले गहरे, काले रंग के लेप हमेशा अनुसंधान के लिए उत्सुकता का केंद्र रहे हैं। इन पतली परतों को रॉक/डेजर्ट वार्निश कहा जाता है। डार्क विनियर आमतौर पर Fe और Mn ऑक्साइड और हाइड्रॉक्साइड से बने होते हैं, साथ में मिट्टी के खनिज, सैलिसियस सामग्री और कुछ ट्रेस तत्व होते हैं। सबसे विशिष्ट तत्व लोहा और मैंगनीज हैं; इसलिए, इन सामग्रियों को आमतौर पर फेरोमैंगनीज रॉक कोटिंग्स के रूप में भी जाना जाता है। ये सामग्रियां विभिन्न पर्यावरणीय और रासायनिक प्रक्रियाओं के माध्यम से समय के साथ चट्टान की सतहों पर जमा होती हैं। इन गूढ़ कोटिंग्स ने शोधकर्ताओं को रॉक वार्निश परतों के गठन तंत्र को समझने, उनके चरम गुणों का अध्ययन करने और जलवायु परिवर्तन और कई हज़ार साल पहले की प्राकृतिक घटनाओं का अनुमान लगाने के लिए आकर्षित किया है। रॉक वार्निश का मूल मार्ग (जैविक या अजैविक) विवादास्पद है। विभिन्न शोधकर्ताओं के लिए इन डार्क कोटिंग्स के निर्माण के लिए एक तंत्र की पहचान करना अत्यंत महत्वपूर्ण है ताकि जीवाश्म अनुसंधान को प्रभावित करने वाले शारीरिक और जैविक कारकों की बेहतर जानकारी, दुनिया भर में पर्यावरण परिवर्तन, और मैंगनीज (एक प्रमुख मौलिक घटक) के प्रमुख महत्व का दर्पण किया जा सके।

इस शोध कार्य में जिस अध्ययन पर चर्चा की गई है, वह भारतीय संदर्भ में रॉक वार्निश को रासायनिक रूप से चिह्नित करने और खनिज-रोगाणुओं की बातचीत को समझने का पहला प्रयास है, विशेष रूप से लद्दाख (उत्तर-पश्चिमी) भारत के उच्च ऊंचाई, ठंडे शुष्क क्षेत्रों से, विविध विश्लेषणात्मक तकनीकों का उपयोग करके इसके गठन के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्नों को संबोधित किया, क्योंकि इन स्वाभाविक रूप से होने वाली कोटिंग्स पर

अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। पूरे अध्ययन को प्रभावी ढंग से दो खंडों में वर्गीकृत किया गया था: पहला खंड लंबे समय से चल रहे विवाद से विदित है कि क्या रॉक वार्निश जैविक या अजैविक प्रक्रियाओं से उत्पन्न हुआ है, और दूसरा खंड रॉक वार्निश के विद्युत रासायनिक उपयोगों पर केंद्रित है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान कार्य ने इलेक्ट्रोकेमिकल अनुप्रयोगों में रॉक वार्निश के उपयोग की स्थापना की, जिसका संबंधित शोध आवश्यकताओं को पूर्ण करने में बड़ा योगदान है, लेकिन पहले इसकी सूचना नहीं दी गई है। रॉक वार्निश का उत्पादन कैसे किया जाता है, यह समझाने के लिए कई सिद्धांत प्रस्तावित किए गए हैं, लेकिन किसी को भी व्यापक रूप से स्वीकार नहीं किया गया है। रॉक वार्निश के उत्पादन में शामिल प्रक्रियाओं (जैविक और अजैविक) को समझना भू-रसायन और रॉक वार्निश लक्षण वर्णन के अन्य संबंधित पहलुओं का प्राथमिक उद्देश्य है। पेट्रोग्राफी, FESEM-EDS, XRD, रमन स्पेक्ट्रोस्कोपी, संपर्क कोण विश्लेषण, XPS, ED-XRF, WD-XRF, ICP-MS, GC-MS/MS, IR स्पेक्ट्रोस्कोपी, चुंबकीय सहित इसे पूरा करने के लिए कई विश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग किया गया है। जिसमें खनिज विज्ञान, आईआर-एमएस, और मेटागेनोमिक विश्लेषण सम्मिलित है।



आगंतुक चट्टान (जिस सतह के ऊपर वार्निश मौजूद है) में Mn, Fe, Si, O, Mg, Na, P, और K जैसे तत्वों के वितरण का एक तुलनात्मक विश्लेषण पाया जाता है, जिसमें से Mn और Fe जैसे तत्वों की विद्यमानता का सुझाव देता है। वार्निश परत में सांद्रता अपेक्षाकृत अधिक पाई गई, जिससे वार्निश परत रचना में इन दो तत्वों की प्रमुख भूमिका का पता चलता है। उपर्युक्त अवलोकनों को मिलाकर, हम कह सकते हैं कि Mn और Fe

उच्च तापमान, यूवी विकिरण और प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों से आंतरिक सामग्री को बचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कीमा वार्निश, नेवादा, संयुक्त राज्य अमेरिका के पिछले मेटागेनोम परिणामों की तुलना में, इन स्थानों के मेटागेनोम हमारे लद्दाख वार्निश नमूनों से पूरी तरह अलग थे। यह दर्शाता है कि कैसे वार्निश परत में माइक्रोबायोटा स्थान-विशिष्ट है और नमी, तापमान, यूवी प्रवाह और ऊंचाई संबंधी अभिविन्यास सहित भौतिक लक्षणों से प्रभावित होते है। इन खनिज विश्लेषणों ने बिरनेसाइट (एक प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले खनिज) के रूप में मैंगनीज डाइऑक्साइड (MnO_2) की विद्यमानता का पता लगाने में भी मदद की, जिसने बदले में हमारे शोध को इसके विद्युत रासायनिक व्यवहार की ओर मोड़ने हेतु उत्सुक किया क्योंकि MnO_2 एक बहुत ही आशाजनक इलेक्ट्रोएक्टिव पदार्थ है। सेमीकंडक्टिंग Fe और Mn की प्राकृतिक रॉक वार्निश सामग्री की संरचना ने विद्युत रासायनिक अनुप्रयोगों में इसके उपयोग को उन्नत किया है। हमने पहली बार सफलतापूर्वक प्रदर्शित किया कि रॉक वार्निश का उपयोग जल इलेक्ट्रोकैटलिसिस और मेथनॉल ऑक्सीकरण प्रक्रियाओं के लिए एक उत्कृष्ट इलेक्ट्रोकैटलिस्ट के रूप में किया जा सकता है। यह शोधकार्य रॉक वार्निश पर भावी शोध का मार्ग प्रशस्त करता है क्योंकि यह वार्निश गुणों का व्यापक विश्लेषण है।

सारांशत: रॉक वार्निश रेगिस्तानी चट्टानों पर विद्यमान बाहरी आवरण हैं जो प्राचीन पर्यावरणीय प्रक्रियाओं के अभिलेख के रूप में कार्य कर सकते हैं। इस शोध ने इन वार्निशों की रासायनिक संरचना का अध्ययन करने हेतु विश्लेषणात्मक, इलेक्ट्रोकेमिकल और जीनोमिक तकनीकों को संयोजित किया (तंत्र को समझने के लिए) जिससे इनकी रचना होती है। यह पर्यावरण के इतिहास का अध्ययन करने का एक रोमांचक अवसर प्रदान करता है जिसमें चट्टानें सुशोभित हैं, तथा वैश्विक जलवायु को आकार देने वाली प्राकृतिक प्रणालियों में नई अंतर्दृष्टि मिलती है।

शोधार्थी का नाम: डॉ. स्तुति सक्सेना



शोध का शीर्षक: अंडमान और निकोबार द्वीप समूह से मध्यनूत-अतिनूतन (मियोसीन-प्लियोसीन) अनुक्रम की फाइटोप्लांकटन विविधता और भू-रसायन पर जांच: पुराजलवायु पुनर्निर्माण में उनका महत्व

पर्यवेक्षक: डॉ. अमित कुमार घोष (एमेरिटस वैज्ञानिक - सीएसआईआर, पूर्व-वैज्ञानिक-एफ, बी.सा.पु.सं., लखनऊ) एवं प्रो. जय प्रकाश केशरी (वर्धमान विश्वविद्यालय)

विभाग का नाम: मरीन माइक्रोपैलिऑनटोलॉजी

विश्वविद्यालय का नाम एवं वर्ष: वर्धमान विश्वविद्यालय, वर्धमान, पश्चिम बंगाल (2022)



सारांश

नियोजीन काल जिसमें मध्यनूतन-अतिनूतन (मियोसीन-प्लियोसीन) युग शामिल हैं, पृथ्वी ग्रह के भू-वैज्ञानिक इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण समयों में से एक है। इस अवधि में जलवायु और समुद्री परिवर्तन हुए जिनके जीवाश्म रिकॉर्ड सुपरिरक्षित हैं। इस अवधि के दौरान हिमालय का उत्थान, अंडमान-निकोबार के अग्र-आर्क बेसिन में गहरे पानी के समुद्री तलछट का उत्थान, बंगाल फैन का विकास एवं एशियाई मानसून की तीव्रता का विकास हुआ। भारतीय संदर्भ में, अंडमान और निकोबार घाटी के विभिन्न द्वीपों में मुख्य रूप से गहरी समुद्री फेसिस के नियोजीन तलछट का सबसे अच्छा प्रतिनिधित्व किया जाता है।

अतः वर्तमान शोधकार्य अंडमान और निकोबार द्वीप समूह के मध्यनूतन-अतिनूतन (मायोसीन-प्लायोसीन) तलछट में संरक्षित सिलिकामय डायटम, कैल्कैरीयस नैनोफॉसिल्स और जियोकेमिकल चिह्नको पर किया गया है। रिची के द्वीपसमूह (हैवलॉक और नील द्वीप) और कार निकोबार द्वीप से डायटम और चूनेदार परासुक्ष्मजीवाश्म (कैल्कैरीयस नैनोफॉसिल्स) पर विस्तृत अध्ययन किया गया है डायटम और चूनेदार परासुक्ष्मजीवाश्म (कैल्कैरीयस नैनोफॉसिल्स) का गुणात्मक और मात्रात्मक विश्लेषण किया गया है। हैवलॉक एवं नील द्वीप के हरयांश (ऑउटक्रॉप्स) हेतु विविधता (डाइवर्सिटी) प्रवृत्ति (ट्रेंड्स) अभिलेखित किए गए हैं। हैवलॉक और नील द्वीपों के सभी अध्ययन किए गए वर्गों के लिए पुरापारिस्थितिक क्षेत्रों को चित्रित करने हेतु डायटम संयोजनों का CONISS क्लस्टर विश्लेषण किया गया है।

समुद्र के स्तर में उतार-चढ़ाव का पता लगाने हेतु प्रारंभिक मध्यनूतन (अर्ली मियोसीन) से प्रारंभिक अतिनूतन (अर्ली प्लियोसीन) तक डायटम के प्लवकीय/नितलस्थ (प्लैंकटोनिक/बेंथिक) अनुपात को ध्यान में रखा गया है। समस्त वर्गों में डायटम के गर्म, ठंडे और महानगरीय टैक्सा की बहुतायत में भिन्नता देखी गई है जो ग्रीष्म उष्णकटिबंधीय जलवायु परिस्थितियों के प्रसार को इंगित करता है। मुख्य घटक विश्लेषण (प्रिंसिपल कंपोनेंट एनालिसिस, पीसीए) किया गया है जो अति संबंधित नमूनों को समूहित करने और निक्षेपण वातावरण को निर्धारित करने में मदद करता है। वर्गों के लिए सापेक्ष बहुतायत और महत्वपूर्ण परासूक्ष्मजीवाश्म (नैनोफॉसिल) घटनाएं निर्धारित की गई हैं।

हालांकि विभिन्न दृश्यांशों (आउटक्रॉप्स) की उम्र का पता लगाने हेतु डायटम का उपयोग किया गया है, परंतु दृश्यांशों (आउटक्रॉप्स) की सटीक आयु का अनुमान विभिन्न चूनेदार परासुक्ष्मजीवाश्म (कैल्कैरीयस नैनोफॉसिल्स) जैवघटनाओं (बायोइवेंट्स) का उपयोग करके किया गया है। समुच्चय में प्राप्त परासूक्ष्मजीवाश्म (नैनोफॉसिल) प्रजातियों के आधार पर, अवसादन दर के आकलन के साथ-साथ अंडमान और निकोबार द्रोणी बेसिन में मध्यनूतन-अतिनूतन (मियोसीन-प्लियोसीन) अनुक्रम के दौरान पुरासागरीय परिदृश्य को समझने का प्रयास किया गया है। अभिलिखित डायटम और परासूक्ष्मजीवाश्म (नैनोफॉसिल) टैक्सा का सहसंबंध समकाल स्तरीयखंड (टाइम स्लाइस) के अन्य ज्ञात

संयोजनों से किया गया है। इनके अलावा, *निकलीथस एंपलीफाइकस* (*Nicklithus amplificus*) का सबसे पहला अभिलेख हिंद महासागर, पैराथेथिस और एड्रियाटिक सागर मे पहली बार प्रलेखित किया गया है। इस प्रजाति की विकासवादी वंशावली, पुराभूगोल एवं पुराजलवायु प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

हेवलॉक द्वीप के बर्डिगेलियन-लांघियान (अर्ली से मध्य मियोसीन), नील द्वीप के टोर्टोनियन (लेट मिओसिन) और कार निकोबार द्वीप के ज़ैंकलीन (अर्ली प्लियोसीन) से प्राप्त कुछ चयनित नमूनों का भू-रासायनिक विश्लेषण किया गया है। आईसीपी-एमएस द्वारा अनुपथ (ट्रेस) तत्व और दुर्लभ-पृथ्वी तत्व पैटर्न की बहुतायत का निर्धारण किया गया है। भूजात स्रोतों से निविष्ट (इनपुट) एवं उनकी उत्पत्ति के बारे में अंतर्दृष्टि प्राप्त किया गया है। जीवविज्ञान (बायोजेनिक) सिलिका के आकलन हेतु कार निकोबार द्वीप के ज़ैंकलीन अवसाद तलछट का FTIR विश्लेषण किया गया था।

वर्तमान अध्ययन के आधार पर विभिन्न सूक्ष्मजीवाश्मों (माइक्रोफॉसिल्स) पर, अंडमान-निकोबार द्रोणी (बेसिन) के मध्यनूतन-अतिनूतन (मियोसीन-प्लियोसीन) तलछट से एक उच्च विभेदन बहु-सूक्ष्मजीवाश्म जैव कालानुक्रण (हाई रिज़ॉल्यूशन मल्टीपल माइक्रोफॉसिल बायोक्रोनोलॉजी) विकसित किया गया है जिसमें सटीक आयु और विभिन्न जैव घटनाएं (बायो इवेंट्स) चिह्नित है।

मध्यनूतन से अतिनूतन (मियोसीन से प्लियोसीन) के दौरान जलवायु और पुरामहासागरीय परिदृश्य को समझने हेतु कई सूक्ष्मजीवाश्मों (माइक्रोफॉसिल) बहुतायत, उनके विकास और भू-रासायनिक चिह्नो (हस्ताक्षरों) के मध्य संबंधों को ध्यान में रखा गया है।



शोधार्थी का नाम: डॉ. अमित कुमार मिश्रा

शोध का शीर्षक: चोपता तुंगनाथ-क्षेत्र, पश्चिमी हिमालय, भारत से प्राय होलोसीन के दौरान वनस्पति की गतिशीलता, जलवायु परिवर्तन और मानवजनित प्रभाव का अध्ययन

पर्यवेक्षक: डॉ. रतन कर (विज्ञानी-एफ, बी.सा.पु.सं.,लखनऊ) एवं प्रो. उमा कांत शुक्ल (बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

विभाग का नाम: भू-विज्ञान

विश्वविद्यालय का नाम एवं वर्ष: बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, भारत (2022)



सारांश

इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य, जलवायु-वनस्पति संबंधों को समझना, जलवायु परिवर्तनशीलता का पुनर्निर्माण एवं होलोसीन के दौरान चोपता-तुंगनाथ क्षेत्र, उत्तराखंड राज्य में मानवजनित गतिविधियों की जांच करना था। बहु-प्रॉक्सी दृष्टिकोण के आधार पर अध्ययन को परागाणु विज्ञान (पैलिनोलॉजी), खनीज चुंबकत्व और ग्रैनुलोमेट्रिक विश्लेषण के माध्यम से किया गया था, जिसमें परागाणु विज्ञान संबंधी (पैलिनोलॉजिकल) अध्ययन पर मुख्यतः ध्यान दिया गया है।

इस अध्ययन के प्रमुख बिंदु हैं:

1. पराग-वनस्पति संबंध मूल रूप से गैर-रैखिक है, जो सभी नमूनों में *पाइनस* पराग के अत्यधिक प्रभुत्व के कारण आसपास की वनस्पतियों के लिए असंगत है। *पाइनस* पराग का अति-प्रतिनिधित्व इसके विपुल उत्पादन, कुशल पवन फैलाव और तलछट में अच्छी संरक्षण क्षमता के कारण है।
2. (एन पी पी) : (गैर परागकीय युग्मक, टेरिडोफाइटिक बीजाणु, शैवाल और कवक अवशेष) वनस्पति में उनकी उपस्थिति के अनुसार प्रदर्शित होती है और शीत परिस्थितियों के कारण उच्च उचाई वाले क्षेत्रों में सामान्यता कम ही पाए जाते है। पराग समूहों में कोप्रोफिलस कवक का अच्छा प्रतिशत क्षेत्र में चराई की उपस्थिति के कारण होता है।
3. मल्टीप्रॉक्सी डेटा और 14सी डेटिंग के आधार पर, पिछले 11810 साल वर्ष पूर्व के दौरान अध्ययन क्षेत्र के जलवायु परिवर्तन को छह जलवायु चरणों में वर्गीकृत किया गया है:
   - 190 वर्ष बाद -कोष्ण एवं आर्द्र
   - 820 वर्ष से 190 वर्ष पूर्व- शीत और शुष्क
   - 4080 वर्ष से 820 वर्ष पूर्व- कोष्ण एवं आर्द्र
   - 4550 साल से 4080 साल तक पूर्व - शीत और शुष्क
   - 8750 वर्ष से 4550 वर्ष पूर्व - कोष्ण एवं आर्द्र
   - 11810 वर्ष से 8750 वर्ष पूर्व- शीत और शुष्क
4. चोपता-तुंगनाथ क्षेत्र के पुराकाल के अभिलेखों ने ना केवल पुरा-जलवायु और पुरा-वनस्पति परिवर्तनों को दर्ज किया है, बल्कि मानवजनित गतिविधियों के प्रभाव की भी पहचान की है। इस क्षेत्र में मानव प्रभाव का यह प्रमाण एस्टरियोइडी और सिचोरियोइडी पराग की आवृत्ति में तेजी से वृद्धि से प्रकट होता है।
5. उप-सतह प्रोफाइल के पराग रिकार्ड मानवजनित गतिविधियों के प्रमाण दर्शाते है, जैसे कि *क्वार्कस* और *रोडोडेंड्रोन* वृक्षों को नुकसान और पालतू जानवरों द्वारा अतिचारण। इसके अलावा, कोप्रोफिलस कवक की उपस्थिति क्षेत्र में मानवजनित

गतिविधियों की शुरुआत और गहनता को निर्धारित करने के लिए जानकारी प्रदान करती है।



शोधार्थी का नाम: डॉ. शुभांकर प्रामाणिक

शोध का शीर्षक: प्रायद्वीपीय भारत में गैर-समुद्री पर्मियन-ट्राइएसिक अनुक्रम में जीवाश्म वनस्पति में परिवर्तन और विकास का आकलन

पर्यवेक्षक: डॉ. अमित कुमार घोष (एमेरिटस वैज्ञानिक, सीएसआईआर, पूर्व-वैज्ञानिक-एफ, बी.सा.पु.सं., लखनऊ) एवं प्रोफेसर जय प्रकाश केशरी (वनस्पति विज्ञान विभाग, वर्धमान विश्वविद्यालय, वर्धमान)

विभाग का नाम: वनस्पति विज्ञान

विश्वविद्यालय का नाम एवं वर्ष: वर्धमान विश्वविद्यालय, वर्धमान, पश्चिम बंगाल (2022)

सारांश

पर्मियन-ट्राइएसिक (P-T) सामूहिक विनाश (252.28 ± 0.08 मिलियन वर्ष) का स्थल-जीवन एवं जल-जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। स्थलीय क्षेत्र में पर्मियन एवं ट्राइएसिक निक्षेपों के बीच चित्रण हालांकि अधिकांश भू-वैज्ञानिक संरचनाओं में असमानताओं के कारण अपूर्ण रूप से जाना जाता है। प्रायद्वीपीय भारत में गैर-समुद्री पर्मियन-ट्राइएसिक अनुक्रम में जीवाश्म वनस्पति में परिवर्तन पाया जाता है जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। पर्मियन के दौरान भूमि पर आधिपत्य रखने वाली वनस्पति पूर्णरूपेण विलुप्त नहीं हुई थी। परिवर्तन तत्काल के बजाय क्रमिक था। तातापानी-रामकोला क्षेत्र कोयला में स्थित दो भू-वैज्ञानिक संरचनाओं (बांकी नदी खंड *एवं* इरिया नाला खंड) के पर्मियन-ट्राइएसिक अनुक्रम से प्राप्त सूक्ष्म वनस्पति जीवाश्म, इस वर्तमान अन्वेषण में जताते हैं कि ट्राइएसिक में सफलतापूर्वक पनपने वाले जीवन-रूपों ने पर्मियन के अंतिम चरणों से ही खुद को उप-निवेश बनाना शुरू कर दिया था। जीवाश्म गुरुबीजाणु (मेगास्पोर) पीढ़ी, *मैटुरिस्पोराइट्स* (*Maiturisporites*) एवं *पेंटिएला* (*Pantiella*), जो आज तक केवल ट्राइएसिक से ही जाने जाते थे, इस मौजूदा अन्वेषण में दोनों संरचनाओं के अंतिम पर्मियन अवसाद से अभिलेखित किए गए हैं। वर्तमान अन्वेषण में पर्मियन और ट्राइएसिक अवसाद से पहली बार एकल छिद्र गुरुबीजाणु (मोनोलिट मेगास्पोर) मिले हैं, जो पर्यावरणीय उत्परिवर्तन के कारण या प्रगतिशील विकास के रूप में एक ही जाति के भीतर, गुरुबीजाणु-बहुरूपता के विकास का संकेत हो सकते हैं।

निदपुर के प्रारंभिक ट्राइएसिक निक्षेपों में पाये जाने वाले *ग्लोसोप्टेरिस* (*Glossopteris)* और *डाइक्राइडियम* (*Dicrodium)* की मिश्रित जीवाश्म वनस्पतियों से पता चलता है कि पर्मियन-ट्राइएसिक पारिस्थितिक संकट के बाद दिखाई देने वाली वनस्पतियों में कुछ प्रजातियां संपूर्णतः रूप से नूतन थीं और शेष जाति पहले से ही विद्यमान थीं, हालांकि रूपात्मक विविधताओं के साथ वर्तमान अन्वेषण में, पर्मियन में रूपात्मक रूप से सरल सतह वाले गुरुबीजाणु, अधिक मिले हैं। दूसरी ओर, ट्राइएसिक से अभिलिखित हुए गुरुबीजाणु रूपात्मक रूप से जटिल हैं। परागकणों की जांच (पेलिनोलॉजिकल जांच) से पता चला है कि ट्राइएसिक निक्षेपों में रेखीय द्विसपुट वाले परागकणों (स्ट्राइट डायसेकेट) की संख्या कम और रेखाहीन है अपितु दो थैली वाले परागकणों (नॉन-स्ट्राइट डायसेकेट) की संख्या अधिक है। भू-रासायनिक विश्लेषण द्वारा, इरिया नाला खंड के पर्मियन-ट्राइएसिक अनुक्रम में कार्बन समस्थानिक भ्रमण (CIE-δ13Corg.) में एक नकारात्मक बदलाव सूचित किया गया है। इस शोध प्रबंध का उद्देश्य प्रायद्वीपीय भारत में पर्मियन-ट्राइसिक अनुक्रम की बेहतर समझ हेतु, जिसमें वनस्पति स्थूल जीवाश्म (प्लांट मैक्रोफॉसिल्स), सूक्ष्म वनस्पति जीवाश्म (परागाणुसंरूप) और भू-रासायनिक विश्लेषण (ऑर्गेनिक कार्बन जियोकेमिस्ट्री) से निकाले गए संयुक्त निष्कर्ष हैं।

शोधार्थी का नाम: डॉ. लमगिनसांग थोम्टे



शोध का शीर्षक: पूर्वोत्तर भारत से *पाइनस केसिया* के विभिन्न वृक्ष-वलय मापदंडों से जलवायु संकेत

पर्यवेक्षक: डॉ. संतोष के. शाह (विज्ञानी-ई, बी.सा.पु.सं.) एवं प्रो. अबनी के. भगवती (गुवाहाटी विश्वविद्यालय)

विभाग का नाम: भू-विज्ञान विभाग

विश्वविद्यालय का नाम एवं वर्ष: गुवाहाटी विश्वविद्यालय, जलकुंबरी, गुवाहाटी, असम, भारत (2023)

सारांश

वर्तमान अध्ययन में, पूर्वोत्तर भारत में उगने वाले पाइनस केसिया के विभिन्न वृक्ष-वलय मापदंडों से जलवायु संकेतों का मूल्यांकन मासिक और दैनिक जलवायु का उपयोग करके विकास-जलवायु प्रतिक्रिया सहसंबंध की गणना करके किया गया है। अधिकांश स्थालों की कुल वार्षिक वलय चौड़ाई और अग्रदारू (अर्लीवुड) कालक्रम के परिणामों ने सर्दियों के दौरान वर्षा के लिए महत्वपूर्ण सकारात्मक विकास प्रतिक्रिया और मानसून-पूर्व/वसंत और शुरुआती मानसून के मौसम के दौरान तापमान में नकारात्मक वृद्धि प्रतिक्रिया का एक बड़े पैमाने पर समकालिक पैटर्न का खुलासा किया।

अधिकांश समायोजित लेटवुड कालानुक्रमों ने यह भी प्रदर्शित किया कि पश्चदारू (लेटवुड) विकास मुख्य रूप से शीत ऋतु वर्षा से नियंत्रित होता है। हालाँकि अधिकांश समायोजित पश्चदारू (लेटवुड) कालानुक्रमों में एक शुरुआती देर से ग्रीष्म ऋतु में वर्षा का संकेत भी पाया गया, ये महत्व में काफी हद तक माध्यमिक थे। समायोजित लेटवुड कालक्रम में तापमान संकेतों ने अन्य दो मापदंडों के सापेक्ष देर से प्रति-मानसून/वसंत के मौसम से मध्य-ग्रीष्म-ऋतु के प्रति विलंबित प्रतिक्रिया का संकेत देते हैं।

मानसून-पूर्व/वसंत के मौसम के दौरान कुल वलय चौडाई (रिंगविड्थ) और स्व-कैलिब्रेट किए गए पालमर अनावृष्टि गंभीरता सूचकांक (scPDSI) के बीच महत्वपूर्ण सहसंबंध देखा गया, जो आर्द्रता को एक सीमित कारक के रूप में वृक्षों के विकास को संदर्भित करता है। इस मजबूत संबंध के आधार पर, पूर्वोत्तर भारत के लिए पिछले 149 वर्षों से प्री-मानसून scPDSI (अनावृष्टि) परिवर्तनशीलता को पुर्नरचित किया गया था। पुनर्रचना, भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापक अनावृश्टि की पूर्व घटनाओं के साथ समानता दर्शाता है।

जलवायु में होने वाली पुनरावृत्ति तथा इसका सहसंबंध इस क्षेत्र में पूर्व-मानसून, अनावृष्टि परिवर्तनशीलता और वैश्विक महासागर-वायुमंडलीय संचलन प्रणालियों के बीच संभावित संबंध को दर्शाते हैं।

शोधार्थी का नाम: डॉ. नंदिता तिवारी



शोध का शीर्षक: भौतिक संवेदनाओं और पुरातत्वीय विषयों के संदर्भ में भारत से मिले नियोजीन युग के कैरोफाइट जीवाश्म समूह एवं अधिष्ठित रूपों का अध्ययन तथा भौतिकीय संवेदनाओं का मूल्यांकन

पर्यवेक्षक: डॉ. उदय भान (वरिष्ठ प्रोफेसर, यूनिवर्सिटी ऑफ पैट्रोलियम ऐंड एनर्जि स्टडीस, देहरादून) एवं प्रोफेसर मुकुन्द शर्मा (पूर्व वैज्ञानिक 'जी', बी.सा.पु.सं., लखनऊ)

विभाग का नाम: भूगर्भ विज्ञान विभाग

विश्वविध्यालय का नाम एवं वर्ष: यूनिवर्सिटी ऑफ पैट्रोलियम ऐंड एनर्जि स्टडीस, देहरादून, भारत (2023)

सारांश

यह शोध कार्य मुख्यत: दो भूवैज्ञानिक रूप से अलग-अलग सेटिंग्स में गैर-समुद्री नियोजीन अनुक्रमों से जीवाश्म कैरोफाइट के दस्तावेजीकरण के प्राथमिक उद्देश्य के साथ

की गई है: देहरादून के पास मोहंद क्षेत्र का मध्य शिवालिक (उप-हिमालय), और लद्दाख मोलास समूह के बीच टक्कर के क्षेत्र में होने वाली भारतीय और एशियाई प्लेटें (सिंधु सिवनी क्षेत्र), लद्दाख हिमालय। इसके अलावा, जीवाश्म समकक्षों के साथ तुलना के प्रयोजनों के लिए, दून घाटी से मौजूदा जीवित कैरोफाइट गाइरोगोनाइट्स को खोजने और दस्तावेज करने के प्रयास भी किए गए हैं। इस अध्ययन को शुरू करने की प्रेरणा इस तथ्य से मिलती है कि गैर-समुद्री अनुक्रमों के पुरापारिस्थितिकी, बायोस्ट्रेटिग्राफी और पुराजीवभूगोल संबंधित महत्वपूर्ण भू-वैज्ञानिक मुद्दों को संबोधित करने में इस समूह के संभावित महत्व के बावजूद जीवाश्म कैरोफाइटा भारतीय संदर्भ में अपेक्षाकृत कम अध्ययन किया गया है। प्रकाशित साहित्य स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि जीवाश्म कैरोफाइटा, उनके वर्तमान और पिछले प्रसार, बायोस्ट्रेटिग्राफिक उपयोगिता, गाइरोगोनाइट्स के सरल लेकिन कम समझे जाने वाले जैविक गुण, पर्यावरण सहिष्णुता, चिरायता, और भूमि पौधों के लिए पैतृक स्टॉक के रूप में उनकी भूमिका, समकालीन शोधकर्ताओं के लिए वैज्ञानिक प्रश्नों के उत्तरों का संग्रह प्रस्तुत करता हैं।

शोधार्थी का नाम : डॉ. शाज़ी फ़ारूक़ी



शोध का शीर्षक: अधो माही नदी, मुख्य भूमि गुजरात, पश्चिमी भारत में अंतिम चतुर्थमहाकल्प (क्वाटर्नरी) उपपृष्ठीय अवसादों का भू-रासायनिक अध्ययन

पर्यवेक्षक: डॉ. अनुपम शर्मा (विज्ञानी-जी), बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान लखनऊ एवं प्रोफेसर मुनेंद्र सिंह (भू-विज्ञान उच्च अध्ययन केंद्र, लखनऊ विश्वविद्यालय)

विभाग का नाम: भू-विज्ञान विभाग

विश्वविद्यालय का नाम एवं वर्ष: लखनऊ विश्वविद्यालय (2023)

सारांश

यह शोध-प्रबंध माही नदी (नदीय अवसादी अभिलेख) के साथ-साथ रायका, रामपुर एवं चोकरी उपबस्तियों से प्राप्त की गई तीन अवसाद क्रोडों के विवर्तन-जलवायु निहितार्थों, समुद्र तल परिवर्तनों एवं उद्गम-क्षेत्र पुनर्रचना का समाधान करता है। गहरे महासागरों एवं हिम-क्रोड़ों से प्राप्त अवसाद क्रोड़ों का गहन रूप से अध्ययन किया गया है, मगर नदीय अभिलेखों पर आधारित परिशुद्धता व समझदारी मोटे तौर पर कम हैं। अध्ययन से प्राप्त अंतर्दृष्टियां निम्नवत हैं :-

1. 115 हजार वर्षों से 6.7 हजार वर्षों तक (अंतिम अत्यंतनूतन से होलोसीन) आयुनिर्धारित रामपुर अवसाद, क्रोड ने तमाम विवर्तनिक घटनाएं अनुभव की हैं

तथा परिवर्तित जलवायु में निक्षेपित हो गईं। यह एमआईएस-5इ के तुल्य समुद्री उद्गम के सबसे नीचे मृण्मय (मिट्टी) गाध से प्रारंभ होती है, जो मोटे नदीय अवसादों एवं वातोढ़ प्रकृति के अपवाहन अंतराल से आच्छादित है।

2. क्रोड अवसाद अंतिम हिमनदी अधिकतम, तरूणतर ड्रयाज एवं प्रचीनतर ड्रयाज जैसी एमआईएस-3 एवं शुष्कतर घटनाओं के दौरान अंतःउष्णकटिबंधीय अभिसरण मंडल (आईटीसीजेड) और संबद्ध शुष्कता की भारतीय ग्रीष्म मानसून (आईएसएम), उत्तरोन्मुख विस्थापन के प्रबल व दुर्बल होने के चिह्नक अभिलेखित करता है।
3. शैलविज्ञान-संबंधी, भू-रासायनिक एवं एक्स-किरण विवर्तन (एक्सआरडी) अध्ययनों सहित बहु परोक्षी आँकड़ा जहां एक्सआरडी में तनु खंड एवं खनिज स्मेक्टाइट में अभिनिर्धारित बेसाल्टी शैल खंडजों की विद्यमानता अर्द्ध-शुष्क दशा में प्रारंभी रासायनिक अपक्षय जताती हैं। गुजरात में विवर्तनिक-जलवायवी स्थिति माही अवसादों के उत्पादन में रासायनिक अपक्षय पर यांत्रिक अपरदन बढ़ गया।
4. समग्रत: मौजूदा शोधकार्य ने उनके जलवायवी एवं विवर्तनिक निहितार्थों सहित पृष्ठीय प्रक्रमों की पूर्व क्षेत्रीय-आधारित जानकारी ने प्रयोगशाला आँकडा आधार प्रदान किया है। अवसादों हेतु उत्पत्ति का विचार-विमर्श तो और अधिक व्यापकता से स्थिर है जिसमें स्पष्टत: दर्शाया गया है कि दक्कन बेसाल्ट अवसादों का प्रमुख अंशदाता है।

शोधार्थी का नाम: डॉ. हिमानी पटेल



शोध का शीर्षक: प्रागैतिहासिक भारत में प्रारंभिक खेती: उत्तर-पश्चिमी और मध्य भारत में कृषि विज्ञान, आनुवंशिकी और निर्वाह रणनीतियों में नई अंतर्दृष्टि

पर्यवेक्षक: डॉ. नीरज राय (विज्ञानी-'डी', बी.सा.पु.सं.) एवं प्रो. डॉ. आर.पी. सिन्हा (बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी)

विभाग का नाम: वनस्पतिविज्ञान

विश्वविद्यालय का नाम और वर्ष: बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, भारत (2022)

सारांश

भारत सबसे घनी आबादी वाला, विविध भाषाई और सांस्कृतिक देश है, इस विविधता को मानव आबादी के वास के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। मानव



प्रजातियों के पहले आगमन से लेकर अत्यंतनूतन (प्लीस्टोसिन) काल के अंत के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप के भीतर प्रागैतिहासिक और ऐतिहासिक जनसंख्या आंदोलनों के साथ-साथ विचारों और अर्थव्यवस्थाओं के हस्तांतरण हेतु पुरातत्व का वर्तमान परिदृश्य न केवल कलाकृतियों के अवलोकन और पिछली मानव गतिविधि के साथ उनके संबंध पर निर्भर करता है, बल्कि इसे विज्ञानी रूप से अधिक रूपांतरित किया गया है। अधिकांश पश्चिमी देशों ने अतीत की बस्तियों और गतिविधियों को बेहतर ढंग से समझने के लिए पुरातत्व में नवीनतम एवं बहु-विषयक विज्ञानी दृष्टिकोण अपनाना शुरू कर दिया है। पैलियोएथनोबोटनी में मुख्य रूप से पुरातात्विक भंडारों से प्राप्त पुरातात्विक अवशेषों से पुरावनस्पतियों एवं मानव-पौधों की संबंधता का पुनर्निर्माण शामिल है। पुरातात्विक विश्लेषण के द्वारा, मानव-पौधे-संस्कृति-जलवायु संबंधों और कृषि पैटर्न के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त कर सकता है। भारत की कृषि प्रणाली प्रारंभिक मानव प्रथाओं में से एक है और इसे अक्सर भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ कहा जाता है। प्रारंभिक कृषि पद्धतियों में कृषि प्रौद्योगिकी का उपयोग पूंजी-गहन खेतों के बजाय छोटे पैमाने पर किया जाता था। जल प्रबंधन और मिट्टी की देखभाल, वृक्षारोपण में सुधार के लिए नई प्रौद्योगिकियों के विकास ने कुछ हद तक कृषि उत्पादन की लंबी दूरी की लामबंदी में मदद की। इस प्रकार पुरातत्व वनस्पति विज्ञान का अध्ययन हमें समय और स्थान में कृषि पद्धतियों की परिवर्तनशीलता, नई पौधों की प्रजातियों की शुरूआत, उनके समुद्री संपर्क, और प्रसार विविधीकरण को समझने में मदद कर सकता है।

नवपाषाण क्रांति या पहली कृषि क्रांति (चाइल्ड, 1936) मानव संस्कृतियों के लिए शिकार-संग्रह जीवन शैली से कृषि और गतिहीन जीवन शैली में परिवर्तन का एक व्यापक अवस्थापरिवर्तन था, जिससे बड़ी आबादी के लिए स्थायी भोजन का अवसर मिला। व्यापार और फसल प्रसंस्करण रणनीतियों से संबंधित पिछले पहलुओं को समझने के लिए कृषि के पर्याय के रूप में खाद्य उत्पादन शब्द के उपयोग को और अधिक स्पष्टता से समझाया गया है। अतीत में बसे समुदायों ने लोगों को पौधों को पहचानने एवं उनके प्रयोग की समझ प्रदान की ताकि हम यह सीख सकें कि वे कैसे बढ़े और विकसित हुए। हालांकि, कृषि क्रांति के फलस्वरूप फसलों के वर्चस्व, चयन और संकरण से पौधों की उपस्थिति, आकारिकी, आनुवंशिक वास्तुकला और पोषण मूल्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इन अंतरों को समझने के लिए भूतकाल और वर्तमान साधना गतिकी दोनों की समझ की आवश्यकता होती है।

पुरातत्व में कृषि का उदय हमेशा चर्चा का केंद्र बिंदु रहा है। पुरातात्विक स्थलों से जले हुए वानस्पतिक अवशेष के साक्ष्य ने भारत से प्रारंभिक लौह युग की अवधि के बाद के मध्यकालीन काल के संदर्भ में कृषि विविधता मॉडल के संदर्भ में बहुमूल्य योगदान दिया हैं। हालांकि, महाराष्ट्र और गुजरात (उत्तर-पश्चिमी और मध्य भारत) के क्षेत्र में लौह युग और उसके बाद की संस्कृतियों के संबंध में मात्रा और गुणवत्ता दोनों के संदर्भ में



पुरातात्विक तथ्य पर जानकारी कम है। पिछले दो सहस्राब्दियों के दौरान कृषि पैटर्न और जलवायु परिवर्तनशीलता की मानवीय प्रतिक्रिया की खोज पुरातत्वविदों, पुरा-जलवायु विज्ञानियों, आर्थिक वनस्पतिशास्त्री आदि के लिए रुचि का विषय रहा है। इसलिए, वर्तमान अध्ययन उत्तर-पश्चिमी और मध्य भारत में किया गया था। इन क्षेत्रों के कृषि विज्ञान, आनुवंशिकी और जीवन-निर्वाह पर किए गए अध्ययन के परिणाम भारतीय उपमहाद्वीप में प्रारंभिक लौह युग से लेकर मध्य काल तक के अनुपात-अस्थायी प्रारंभिक खेती/भूमि उपयोग तथा आदिमानव के बारे में भी सूचना प्रदान करता हैं।

"प्रागैतिहासिक भारत में प्रारंभिक खेती: उत्तर-पश्चिमी और मध्य भारत में कृषि विज्ञान, आनुवंशिकी और निर्वाह रणनीतियों में नई अंतर्दृष्टि" शीर्षक वाली शोध प्रबंध (थीसिस) में कृषि संबंधी स्थितियों के निर्वाह पैटर्न, स्थानिक-अस्थायी श्रेणियों से संबंधित पुरापाषाण काल और पिछले व्यवस्था को समझने के लिए पुरातत्व की जानकारी शामिल है। यह अध्ययन अतीत के लोगों के वंश का पता लगाने के लिए एक महापाषाणिक मानव दांत के नमूने में प्राचीन डीएनए का प्रथम साक्ष्य विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है और पुरातन वानस्पतिक नमूनों में प्राचीन डीएनए अध्ययन के परिणाम भी प्रस्तुत करता है। वर्तमान कार्य में पांच पुरातात्विक स्थलों का अध्ययन शामिल है। आर्कियोबोटनी (पुरातात्विक अनाज/ बीज, फाइटोलिथ), प्रत्येक साइट से मुख्य प्रॉक्सी के रूप में स्थिर कार्बन (सी) और नाइट्रोजन (एन) आइसोटोप विश्लेषण के साथ पुरातात्विक अवशेषों पर उनके मिट्टी तलछट और उत्तर के पुरातात्विक स्थलों से प्राचीन डीएनए का भी अध्ययन किया गया है। इस थीसिस में पांच अध्याय हैं :-

वर्तमान अध्ययन से निम्नलिखित प्रमुख 'निष्कर्ष' नीचे दिए गए है:

- विदर्भ क्षेत्र, महाराष्ट्र, भारत में रिठी रंजना और फुपगांव में प्रारंभिक लौह युग अवधि सीमा (~ 770 ईसा पूर्व-360 ईसा पूर्व) के परिणाम लौह कृषि उपकरणों के उपयोग के साथ अच्छी कृषि उत्पादकता को दर्शाते हैं। इस अवधि ने विभिन्न मूल के पौधों के अवशेष की एक विस्तृत श्रृंखला को प्रकाश में लाया जो फसल चक्रानुक्रम के साथ-साथ दोहरी फसल (द्वि-मौसमी) पैटर्न का प्रदर्शन करते हैं।
- नागरधन (प्रारंभिक ऐतिहासिक से ऐतिहासिक) और वडनगर 200 ईसा पूर्व और 500 सीई (ऐतिहासिक) में 400 ईसा पूर्व और 300 सीई के दौरान फसल पैटर्न से पता चलता है कि मुख्य फसलों में बड़े अनाज (*ओराईज़ा सैटाइव* , *होर्डियम वल्गारे*, *ट्रिटिकम*) का प्रभुत्व था, छोटे अनाज (*सोरघम बाइकोलर*, *पेनिसेटम ग्लौकम*, *सेटेरिया* एसपी.), तिलहन, फलियां (*विग्ना रेडियाटा* मुंगो, *पाइसम अर्वेन्स*, *लेंस कलिनारिस*, *सीसर एरीटिनम*, *लैथिरस* एसपी) और फाइबर (*लैबलैब पुरप्यूरस*, *मैक्रोटिलोमा यूनिफ्लोरम*) की तुलना में। *लिनम यूसिटालिसिमम, गॉसिपियम* एसपी. जैसे पौधे ग्रीष्म मानसून के साथ एक प्रभावी मानसून से संबंधित सर्दियों और गर्मियों की फसलों



की व्यापकता और 400 ईसा पूर्व तथा 500 सीई के दौरान उच्च फसल विविधता अनुक्रमित होने का संकेत देते है।

- 500-1300 सीई (मध्ययुगीन काल) के बीच जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में फसल पैटर्न, पौधों के अवशेष का विविधीकरण अपेक्षाकृत गर्म और आर्द्र जलवायु परिस्थितियों को इंगित करता है। अनाज और फलियां सहित पौधे की उच्च विविधता, खेती के पैटर्न में निरंतरता का संकेत देती है। चावल की प्रचुरता इस क्षेत्र (उत्तर-पश्चिमी और मध्य भारत) में अच्छी वर्षा की स्थिति को इंगित करती है, जिससे इस अवधि के दौरान कृषि का विविधीकरण होता है।
- मध्यकाल के बाद (~ 1300-1900 ई.) में, पौधे का संयोजन छोटे अनाज वाले बाजरा जैसे - *सेतरिया एसपी, पेनिसेटम ग्लौकम, सोरघम बाइकोलर, पैनिकम मिलिएसियम, डिजिटेरिया एसपी, पासपलम स्क्रोबिकुलटम, इचिनोक्लोआ* में एक प्रमुख बदलाव के साथ होता है। इस चरण में मूंग (*विग्ना रेडियाटा*) जैसी दालों का भी अच्छी तरह से प्रतिनिधित्व किया जाता है। चावल की विरल उपस्थिति इस क्षेत्र में कम पानी की उपलब्धता को इंगित करती है, जिसने कमजोर दप मानसून का अनुभव किया। इस अवधि की पुष्टि विश्व प्रसिद्ध जलवायु प्रकरण लिटिल आइस एज (एलआईए) से होती है।
- चावल के दानों से कार्बन (C) और नाइट्रोजन (N) समस्थानिक डेटा और उनके संबंधित आरएच सूचकांक वडनगर साइट से पिछले दो सहस्राब्दियों के दौरान घटती आर्द्रता को दर्शाते हैं। वर्षा और आर्द्रता के उच्चतम संकेतक ऐतिहासिक चरण के दो नमूनों से हैं और मोटे तौर पर उत्तरी गोलार्ध आरडब्ल्यूपी से सहसंबद्ध हो सकते हैं। मध्यकालीन प्रावस्था के दौरान आरएच सूचकांक और कार्बन भेदभाव कारकों (Δ13C) मानों में मामूली गिरावट आई है, मध्ययुगीन नमूनों में एक उल्लेखनीय बदलाव के साथ, लगभग 1400 सीई द्वारा एक प्रमुख शुष्क बदलाव का संकेत है। इन शुष्क स्थितियों को एलआईए से सहसंबद्ध किया जा सकता है। इन संकेतों को साइट से प्राप्त फसल और गैर-खेती किए गए फाइटोलिथ प्रकारों के सापेक्ष बहुतायत के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है।
- हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि उन्नत दंत सिरेमिक प्रचलन में थे और स्थानीय लोगों, मुख्य रूप से आदिवासी समुदायों द्वारा महापाषाण काल के दौरान दांतों को भरने के रूप में उपयोग किया जाता था, जैसा कि आनुवंशिक विश्लेषण द्वारा सुझाया गया था।
- मैंने पाया कि जले हुए चावल और चावल की भूसी का एक नमूना पुरातात्विक अध्ययन के साथ काफी हद तक असंगत प्रतीत होता है। सभी नमूनों से बहुत सीमांत अंतर्जात aDNA मौजूद है, लेकिन प्राचीन डीएनए पूरी तरह से प्रमाणित नहीं है। हम भविष्य के शोधकर्ताओं से आग्रह करते हैं कि वे पुरातत्वविदों के लिए जले हुए पौधे के

अवशेषों में निवेश करेंगे कि भारत में जलवायु की स्थिति इस प्राचीन डीएनए अनुसंधान के लिए उपयुक्त नहीं है।

- यह देखते हुए कि एडीएनए के निष्कर्षण की विधि विघटनकारी है एवं पुरातात्विक अवशेष बहुत सीमित हैं, यह महत्वपूर्ण है कि जितना संभव हो उतना डेटा एकत्र करने के लिए संसाधनों का आवंटन किया जाए।
- आनुवंशिक पुरातात्विक अभिलेखों को पहचानने और फिर से बनाने की हमारी क्षमता निस्संदेह मानव कथा को समृद्ध करेगी और भविष्य में हमारे साझा मानव अतीत को समझने के पार-अनुशासनात्मक विज्ञानी प्रयास में योगदान देगी। लेकिन पादप आनुवंशिक इतिहास के मामले में एडीएनए का उपयोग करना भारत में संरक्षण की स्थिति एवं जलवायु के कारण बहुत अधिक समस्याग्रस्त है।

शोधार्थी का नाम : डॉ. रिकी डे



शोध का शीर्षक : अंडमान और निकोबार द्वीप समूह से सिलिकासित एवं कैल्सित सूक्ष्मजीवाश्मों (माइक्रोफॉसिल्स) के अध्ययनो से व्युत्पन्न मध्यनूतन से अत्यंतनूतन पुराजलवायु की पुर्नसंरचना।

पर्यवेक्षक: डॉ. अमित कुमार घोष (एमेरिटस वैज्ञानिक, सीएसआईआर, पूर्व-वैज्ञानिक-एफ, बी.सा.पु.सं., लखनऊ) एवं प्रो. अजय कुमार भौमिक (भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान), इंडियन स्कूल ऑफ माइन्स, धनबाद

विभाग का नामः पृथ्वी विज्ञान

विश्वविद्यालय का नाम एवं वर्षः भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, इंडियन स्कूल ऑफ माइन्स, धनबाद, भारत (2023)

सारांश

अभिसाक्ष्य की पुरापारिस्थितिकी व्याख्या करने के लिए चार द्वीपों जैसे हैवलॉक, नील, लिटिल अंडमान (हट बे) अंडमान एवं निकोबार द्रोणी के कार निकोबार के वर्गों से एकत्रित नमूनों पर कई सूक्ष्मजीवाश्मों (माइक्रोफ़ॉसिल्स) और भू-रासायनिक विश्लेषणों का उपयोग करके सूक्ष्मजीवाश्म विज्ञान (माइक्रोपैलियंटोलॉजी) पर विस्तृत अध्ययन किया गया है। मध्यनूतन से अत्यंतनूतन काल (मियोसीन से प्लेइस्टोसिन) के दौरान पुरापर्यावरणों और समग्र पुरामहासागरीय परिदृश्य प्राप्त किया गया है।

हैवलॉक पर तीन खंडों से रेडिओलरियन जैवस्तरिकी (बायोस्ट्रेटीग्राफी) और पुरापारिस्थितिकी (पेलियोइकोलॉजी) पर अध्ययन किया गया है। दो रेडिओलेरियन मण्डलों (ज़ोन) की पहचान की गई जो बर्डिगेलियन-सेरावेलियन युग का सीमांकन करते हैं। नील



द्वीप के खंड से प्राप्त इंडेक्स रेडिओलेरिय प्रजातियों की दो विकासीय संक्रमण (ईटी) घटनायें टोर्टोनियन युग को दर्शाते हैं। कार निकोबार द्वीप समूह से रेडिओलेरियन प्रजातियों के सूचकों के आधार पर इसकी आयु को ज़ांकलीयन युग के रूप में परिभाषित किया गया है।

शैनन-वीनर विविधता सूचकांक, सिम्पसन सूचकांक, मार्गालेफ की प्रचुरता और पिलो की एकरूपता को अनुमान लगाने के लिए रेडिओलिय का विविधता विश्लेषण किया गया। पुरापारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की बेहतर समझ के लिए जल गहराई पारिस्थितिकी सूचकांक (डब्ल्यूएडीई) का विश्लेषण किया गया है।

नील द्वीप पर नील पश्चिमी तट (वेस्ट कोस्ट) संरचना (फॉर्मेशन) के खंड से बत्तीस प्लवक (प्लैंक्टिक) फोरामिनिफेरल टैक्सा की पहचान की गई है। पुराएतिहासिक परिदृश्य की व्याख्या करने हेतु विविध सांख्यिकीय विश्लेषण किए गए हैं। डेटासेट की बेहतर व्याख्या हेतु पीसीए विश्लेषण, स्तरीकृत रूप से बाधित झुंड (क्लस्टर) विश्लेषण (CONISS), SHEBI (जैव मंडल पहचान के लिए SHE विश्लेषण) किया गया। कुछ विशिष्ट निर्वचन के आधार पर प्लायो-प्लीस्टोसीन सीमा का सीमांकन किया गया है। कुछ विशिष्ट वर्गक के आधार पर अतिनूतन-अत्यंतनूतन (प्लायो-प्लीस्टोसीन) सीमा का सीमांकन किया गया है। अतिनूतन के उत्तरार्ध से एक शीत घटना का आरंभ और अतिनूतन- अत्यंतनूतन के दौरान समुद्र उत्थान की घटना की पहचान की गई है।

लिटिल अंडमान द्वीप (हट बे) पर चार अलग-अलग वर्गों में अनावृत, सेरावेलियन से रोडोलिथ बनाने वाली गैर- जानुनत प्रावली (जीनिकुलेट कोरलीन) वाले लाल शैवाल दर्ज किए गए है। रोडोलिथ-बनाने वाली गैर-जानुनत प्रावली में, विभिन्न विकास रूपों और टेफोनोमिक विशेषताओं को उजागर किया गया है। यह अध्ययन इंगित करता है कि अंडमान निकोबार द्रोणी में सेरावेलियन के दौरान कार्बोनेट का उत्पादन अत्यथिक था।

लिटिल अंडमान द्वीप पर एक खंड से संग्रहित किए गए नमूनों पर भू-रासायनिक विश्लेषण किया गया। $\delta^{13}C$, $\delta^{18}O$, टोटल ऑर्गेनिक कार्बन (TOC) को मापा गया और इन विश्लेषणों से पता चला है कि अवसाद निक्षेपण का जमाव हाइड्रोकार्बन रिसाव की निकटता में समुद्र के उथले भाग में हुआ।

आवरण पृष्ठ चित्र:

बीरबल साहनी पुराविज्ञान संस्थान का प्रस्तावित नया भवन।

बौहिनिया सेमला एवं *बौहिनिया रेसीमोसा* पराग का FESEM माइक्रोग्राफ (डॉ. स्वाति त्रिपाठी)

कैम्बे व कच्छ द्रोणी के एम्बर से प्राप्त जैविक अवशेष (डॉ. हुकम सिंह)



प्रो. बीरबल साहनी